151

भारत का विधि आयोग

सत्यमेव जयते

नावधिकरण विषयक अधिकारिता संबंधी

एक सौ इक्यावनवीं रिपोर्ट

1994

के०एम० सिंह
(भारत के भूतपूर्व मुख्य न्यायमूर्ति)

अध्यक्ष
विधि आयोग,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110 001
फोन : कार्यालय : 384475
आवास : 3019465

अशा० पत्रांक : 6 (3) (16)/92–एल सी (एल एल) अगस्त 17, 1994

प्रिय प्रधान मंत्री जी,

"नावधिकरण विषयक अधिकारिता" विषय पर भारत के विधि आयोग की 151वीं रिपोर्ट इसके साथ प्रेषित करते हुए मुझे अत्यंत हर्ष है। यह तेरहवें विधि आयोग के गठन के पश्चात् उसकी 8वीं रिपोर्ट है।

2. "नावधिकरण विषयक अधिकारिता" का विषय, विधि आयोग द्वारा उच्चतम न्यायालय के एम० वी० एलिजाबेथ और अन्य बनाम हरवान इन्वेस्टमेंट एण्ड ट्रेडिंग प्राइवेट लिमिटेड (जे टी 1992(2) एस सी 165) नावधिकरण विषयक मामलों में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की अधिकारिता के संबंध में किए गए संप्रेक्षणों को ध्यान में रख कर स्वप्रेरणा से गहन अध्ययन के लिए हाथ में लिया गया था। भारत की अपनी निजी "नावधिकरण विधि" नहीं है इसके बजाय हमारे न्यायालय, ब्रिटिश संसद् द्वारा अधिनियमित और तत्कालीन औपनिवेशिक भारत पर विस्तारित परिनियमों के अनुसार नावधिकरण विषयक अधिकारिता को प्रशासित करते हैं। ब्रिटिश नावधिकरण विधि में अनेक आमूलचूल परिवर्तन हो चुके हैं किन्तु भारत में नावधिकरण विधि का अधिनियमन या संशोधन करने के लिए कोई विधायी प्रयास नहीं किया गया है। आयोग ने इस रिपोर्ट में इस विषय पर विस्तृत रूप से विचार किया है और विधि के अधिनियमन के लिए सिफारिश की है। सुविधा के प्रयोजनार्थ, प्रस्तावित विधान का प्रारूप इस रिपोर्ट के साथ संलग्न है।

3. आयोग को विश्वास है कि इस रिपोर्ट में अंतर्विष्ट उसकी सिफारिशें स्वीकार की जाएंगी और उन पर कार्रवाई की जाएगी जो पोत परिवहन तथा वाणिज्यिक व्यापार और कारबार की दीर्घकालीन आवश्यकता को पूरा करेगी और नावधिकरण संबंधी विषयों से न्यायालयों की अधिकारिता से संबंधित विधि की अनिश्चेयता को दूर करेगी।

हार्दिक सम्मान सहित,

भवदीय,
(के०एम० सिंह)

माननीय श्री पी०वी० नरसिंह राव,
प्रधान मंत्री एवं विधि, न्याय और कंपनी कार्य मंत्री,
नई दिल्ली ।

संलग्नक : यथोपरि

विषय सूची

खंड 1

			पृष्ठ
अध्याय	1	भूमिका	3
अध्याय	2	साधारण पृष्ठभूमि	7

खंड 2

अध्याय	3	इंगलैंड में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का ऐतिहासिक विकास	13
अध्याय	4	भारत में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का विकास	17

खंड 3

अध्याय	5	अंतरराष्ट्रीय अभिसमय	35
अध्याय	6	अंतरराष्ट्रीय अभिसमय और भारत की प्रास्थिति	32

खंड 4

अध्याय	7	विधि को अद्यतन बनाने के लिए प्रयत्न	37
अध्याय	8	नावधिकरण अधिकारिता की प्रकृति और उसका विस्तार	41
अध्याय	9	नावधिकरण न्यायालय	46
अध्याय	10	निष्कर्ष और सिफारिशें	55
उपाबंध		(I से VIII तक)	59

खंड 1

प्रारंभिक

अध्याय 1

भूमिका

1.1. भारत के संविधान के प्रख्यापन के चवालीस वर्ष पश्चात् भी, विधि शास्त्र के ऐसे क्षेत्र विद्यमान हैं जिनमें न्यायालयों की अधिकारिता की बाबत विषय और साथ ही उनको लागू विधि की बाबत विषय अस्पष्ट, अपूर्ण और असंतोषजनक बने हुए हैं। ऐसा ही एक क्षेत्र, नावधिकरण, पोतपरिवहन, समुद्र द्वारा वहन और समुद्रीय विषयों से संबंधित विधि का क्षेत्र है। विधिशास्त्र के इस क्षेत्र के कुछ पक्षों के संबंध में परिनियम विद्यमान हैं किन्तु एक विशाल क्षेत्र अभी भी शून्य है जिसके लिए विधायी कार्रवाई अपेक्षित है। तथापि संविधान के संक्रमणकालीन उपबंधों के परिणामस्वरूप, जो जब तक कि विनिर्दिष्ट विधान प्रारंभ नहीं किए जाते तब तक सभी विषयों में यथापूर्व स्थिति का बना रहना समर्थ बनाते हैं, आत्यंतिक अंधव्यवस्था का प्रचलन रुक गया है और किंचित सी व्यवस्था संरक्षित रह गई है।

1.2. संविधान के अनुच्छेद 372 में एक साधारण व्यावृत्ति उपबंध अधिनियमित किया गया है कि संविधान के उपबंधों के अधीन रहते हुए "संविधान के प्रारंभ के ठीक-पूर्व, भारत के राज्यक्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियां तब तक उसमें प्रवृत्त बनी रहेंगी जब तक, कि समक्ष विधान मंडल या समक्ष प्राधिकारी द्वारा परिवर्तित या निरसित या संशोधित न की जाएं।" अनुच्छेद के स्पष्टीकरण 1 में "प्रवृत्त विधि की परिभाषा दी गई है जिसमें इस संविधान के प्रारंभ के पूर्व भारत के राज्यक्षेत्र में किसी विधान मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित या निर्मित की गई कोई विधि है और जो पहले निरसित न की गई हो, इस बात के होते हुए भी कि वह या उसका कोई भाग, तब पूर्णतः या किन्हीं विशिष्ट क्षेत्रों में प्रवर्तन में न रहा हो"; और स्पष्टीकरण 2 व्याख्या करता है कि "संविधान के प्रारंभ के ठीक पूर्व भारत राज्यक्षेत्र में से किसी विधान मंडल या अन्य सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित या निर्मित किसी ऐसी विधि का, यथा पूर्वोक्त किन्हीं ऐसे अनुकूलनों और उपांतरणों के अधीन रहते हुए, ऐसा राज्यक्षेत्रातीत प्रभाव बना रहेगा।" इन उपबंधों ने स्वतंत्रतापूर्व अवधि में भारत को लागू पूर्ववर्ती अंग्रेजी कामन विधि और साथ ही अधिष्ठायी विधियों का भारत के गणराज्य बनने के पश्चात् भी प्रवर्तन में बना रहना सुरक्षित रखा है।

1.3. न्यायालयों की अधिकारिता के विषय में, संविधान का अनुच्छेद 225 विनिर्दिष्ट रूप से उपबंध करता है कि संविधान के प्रारंभ की तारीख को विद्यमान उच्च न्यायालयों की सभी अधिकारिता, संविधान द्वारा समुचित विधान मण्डल को प्रदत्त शक्ति के आधार पर विरचित उसकी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए बनी रहेगी। दूसरे शब्दों में किसी विद्यमान उच्च न्यायालय की अधिकारिता, और उसके द्वारा शासित विधि, तथा न्यायालय में न्याय के प्रशासन के संबंध में उसके न्यायाधीशों की अपनी-अपनी शक्तियां जिसके अन्तर्गत न्यायालय के नियमों को बनाने की कोई शक्ति और इसके सदस्यों के एकल पीठ या खंड-पीठ न्यायालयों में अधिष्ठित होने की शक्ति वही बनी रहनी है जो संविधान के प्रारंभ के ठीक पूर्व थी। अनुच्छेद 225 का परंतुक और, अनुच्छेद 226 और 227 कतिपय बातों में जो उच्च न्यायालयों में संविधान के पूर्व नहीं थी, उनकी शक्तियों को व्यापक बनाते हैं जिनका विधि शास्त्र के उन क्षेत्रों पर सीधा प्रभाव है जिनसे हमारा यहां पर संबंध है। अनुच्छेद 32 और 136 भी उच्चतम न्यायालय में शक्तियां निहित करते हैं जो उच्चतम न्यायालय को उन विषयों की जांच करने और प्रभावी तथा निश्चायक अभिमतों की उद्घोषणा करने में वैसे ही समर्थ बनाएंगी जो विधिशास्त्र की इन शाखाओं से संबद्ध हैं जैसे कि वे विषय हैं जो विधि की किसी अन्य शाखा से संबद्ध हैं।

1.4. भारतीय स्वतंत्रता अधिनियम, 1947 के अधीन, भारत एक डोमीनियन बन गया जिसे भारत सरकार अधिनियम, 1935 सहित विद्यमान विधियों को और ऐसे ब्रिटिश परिनियमों को जिन्हें भारत पर विस्तारित सौंपा गया था संशोधित या निरसित करने की सावरेन विधायी शक्ति थी। स्वतंत्रता अधिनियम की धारा 6 ने यह शक्ति, भारत के नव-सृजित डोमिनियन के विधान मंडल को प्रदत्त की। अधिनियम के अधीन 15 अगस्त, 1947 को या उसके पश्चात् पारित किसी ब्रिटिश परिनियम का प्रवर्तन भारत पर विस्तारित नहीं होना था और भारत का विधान मंडल, ब्रिटिश संसद् के अधिनियमों का, भारत को उनके लागू होने में, निरसन या संशोधन करने के लिए सशक्त था। चूंकि ब्रिटिश संसद् द्वारा विरचित अनेक परिनियम भारत को लागू थे अत: संविधान के अनुच्छेद 372 ने विद्यमान विधि के तब तक बने रहने का उपबंध करने की सतर्कता बरती जब तक कि वे सक्षम विधान मंडल द्वारा परिवर्तित, निरसित या संशोधित नहीं कर दिए जाते। संविधान के प्रख्यापन के पश्चात् संसद् को अपनी निजी विधियों को अधिनियमित करके ब्रिटिश परिनियमों को प्रतिस्थापित करने की शक्ति थी यद्यपि संसद् ने 1957 तक ऐसा नहीं किया था। परिणामत: वे ब्रिटिश परिनियम जो भारत के एक "ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र" होने के कारण अभिव्यक्तरूप से भारत पर लागू होते थे, मूल पाठ में किसी परिवर्तन के बिना भारत पर लागू बने रहे। चूंकि भारत ने प्रभुतासम्पन्न गणराज्य की प्रास्थिति अर्जित कर ली थी, अत: ब्रिटिश परिनियमों के बने रहने से विषमताओं का उत्पन्न होना आवश्यकर था, जैसा कि उच्चतम न्यायालय द्वारा **मद्रास राज्य बनाम सी० जी० मेनन**[1] के मामले में नोटिस किया गया था। उच्चतम न्यायालय ने ब्रिटिश संसद् के एक अधिनियम फ्यूजिटिव आफेंडर्स ऐक्ट, 1881 के उपबंधों पर विचार करते समय, यह संप्रेक्षण किया कि उस बदली हुई स्थिति में जो भारत के संविधान के प्रवृत्त होने के पश्चात् उत्पन्न हो गई थी अधिनियम को कार्यान्वित करना और उसे लागू करना संभव नहीं था। उच्चतम न्यायालय ने भारत में प्रवृत्त ब्रिटिश परिनियमों की उनके निरसन या संशोधन की दृष्टि से जांच करने की अत्यंत आवश्यकता पर जोर दिया ।

1.5. उसके पश्चात्, भारत के प्रथम विधि आयोग ने भारत पर लागू या लागू होने के संभावित ब्रिटिश परिनियमों की जांच की और मई, 1957 में सरकार को एक विस्तृत रिपोर्ट (5वीं रिपोर्ट) अग्रेषित की। विधि आयोग ने, वाणिज्यिक पोत परिवहन, प्रत्यर्पण और नावधिकरण विषयक अधिकारिता जैसे उन विषयों से संबंधित ब्रिटिश परिनियमों पर विचार करते समय, जिनकी बाबत भारतीय अधिनियमितियां, संपूर्ण क्षेत्र को आवेष्टित नहीं करती, यह संप्रेक्षण किया कि संसद् के लिए अपनी निज की विधियों का अधिनियमन करके ब्रिटिश परिनियमों को प्रतिस्थापित करना आवश्यक था। विधि आयोग की रिपोर्ट के परिशिष्ट 3 में सिफारिश की गई कि ब्रिटिश परिनियम, अर्थात् ऐडमिरेल्टी ज्यूरिसडिक्शन (इंडिया) ऐक्ट, 1860 और कोलोनियल कोर्ट्स आफ ऐडमिरेल्टी ऐक्ट, 1890 को भारतीय विधि द्वारा निरसित किया जाना चाहिए। आयोग ने यह और सिफारिश की कि कोलोनियल कोर्ट्स आफ ऐडमिरेल्टी ऐक्ट, 1890 के आवश्यक मौलिक उपबंध, भारतीय विधान मंडल द्वारा अधिनियमित, नावधिकरण विषयक उपनिवेश (भारत) अधिनियम में शामिल किए जा सकते हैं ताकि भारतीय विधि, व्यापक हो जाए। विधि आयोग की सिफारिशों के अनुसरण में, संसद् द्वारा 259 परिनियमों को निरसित करते हुए ब्रिटिश परिनियम (भारत को लागू होना) निरसन अधिनियम, 1960 अधिनियमित किया गया था किन्तु, नावधिकरण विषयक अधिकारिता, अप्रभावित बनी रही, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश परिनियमों में यथा अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंध भारत को लागू होते रहे हैं।

1.6. नावधिकरण विषयक अधिकारिता में विधि की यह असंतोषजनक स्थिति, **एम० वी० एलिजाबेथ एण्ड अदर्स बनाम हार्वन इन्वेस्टमेंट एण्ड ट्रेडिंग प्रा० लि०** के मामले में[2] उच्चतम न्यायालय की जानकारी में आई। उच्चतम न्यायालय; नावधिकरण संबंधी अधिकारिता के क्षेत्र में विधायीकृत के अभाव पर आश्चर्यचकित और स्तब्ध रह गया था।

न्यायमूर्ति सहाय ने इसे गंभीरता से महसूस किया तथा अपनी स्तब्धता और अपना आश्चर्य निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त किया :

> "किन्तु, 1991 में भी जो सुनना आश्चर्यजनक था वह यह था कि भारत गणराज्य में उच्च न्यायालयों द्वारा प्रयोग की गई नावधिकरण विषयक अधिकारिता अभी भी गतकालिक इंगलिश ऐडमिरल्टी कोर्ट्स ऐक्ट, 1861 (जिसे इसमें इसके पश्चात् अधिनियम निर्दिष्ट किया गया है) द्वारा शासित हो रही है जिसे ऐडमिरल्टी ऐक्ट, 1890 (संक्षेप में 1890 का अधिनियम) के (इंगलिश) उपनिवेशक न्यायालयों द्वारा लागू किया जाता था और जिसे कोलोनियल कोर्ट्स आफ ऐडमिरल्टी (इंडिया) ऐक्ट, 1891 (1891 का अधिनियम सं० 16) द्वारा अंगीकार किया गया था। इसकी अप्रिय ध्वनि, कानों में गूंजने पर भी इसमें कोई बचाव प्रतीत नहीं होता। यह स्तब्धता और भी बढ़ गई जब यह पता लगा कि कार्यकलाप की ऐसी स्थिति, विधायी कृत्य के अभाव के कारण है और वह भी उच्चतम न्यायालय के **मद्रास राज्य बनाम सी० जी० मेनन और साक्ष्य** के मामले में[3] विद्यमान इस विनिश्चय के परिप्रेक्ष्य में कि संविधान का अनुच्छेद 372 इस विधि के लिए व्यावृत्ति नहीं हो सकता क्योंकि समूहन, प्रभुतासंपन्न लोकतांत्रिक गणराज्य की संकल्पना के विरुद्ध है। विधि आयोग ने भारत को लागू ब्रिटिश परिनियमों संबंधी अपनी 5वीं रिपोर्ट में संविधान के अनुच्छेद 372 के विस्तार पर विस्तृत चर्चा की थी और यह संप्रेक्षण किया था कि वे ब्रिटिश परिनियम, जो भारत के एक ब्रिटिश अधिकृत क्षेत्र होने के कारण अभिव्यक्तरूप से भारत पर लागू होते थे, मूल पाठ में कोई परिवर्तन किए बिना भारत को लागू माने जाते हैं, अत: आयोग ने काफी समय पूर्व 1957 में, उन परिनियमों की विषय-वस्तु पर जहां, ऐसा करना आवश्यक है, अपनी विधियां अधिनियमित करने और यह स्पष्ट करते हुए कि परिनियम अब भारत को लागू नहीं है, विधायी कार्रवाई करने की अत्यावश्यकता पर जोर दिया था।"

न्यायमूर्ति थोमेन ने भी अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय और घोषणाओं को ध्यान में रखकर नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित विधि के संहिताकरण की आवश्यकता पर जोर दिया था[4]। विद्वान न्यायाधीश ने यह संप्रेक्षण किया कि भारत के विधि आयोग को इस विषय में कार्रवाई करना चाहिए।

1.7. इन अभिवचनों का व्यापक प्रभाव यह है कि भारत के उसके अपने संविधान के अधीन गणतंत्र होने के बावजूद, भारतीय न्यायालय नावधिकरण विषयक, पोतपरिवहन और सामुद्रिक विधि, इंगलिश कामन ला और ब्रिटिश संसद् द्वारा अधिनियमित तथा औपनिवेशिक भारत पर विस्तार की गई परिनियम विधि के अनुसार शासित करते रहे हैं। हालांकि ब्रिटिश नावधिकरण विधि में अनेक मूलभूत परिवर्तन हो चुके हैं फिर भी भारत में नावधिकरण, पोतपरिवहन और सामुद्रिक विधि के संपूर्ण क्षेत्र को आवेष्टित करने वाला कोई विधान नहीं है और नावधिकरण की अधिकारिता रखने वाले भारतीय न्यायालय अभी भी इंगलिश न्यायिक पूर्व निर्णयों का अनुसरण कर रहे हैं। भारत में ब्रिटिश राज के दौरान मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास स्थित तीन उच्च न्यायालय नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग करते थे, किन्तु संविधान के प्रख्यापन के पश्चात्, संविधान द्वारा और न्यायालय स्थापित किए गए हैं नावधिकरण विषयक मामलों की बाबत उनकी अधिकारिता स्पष्ट नहीं है। भारत के समुद्र तट की लम्बाई लगभग 5700 कि०मी० है और यह उपमहाद्वीप तीन दिशाओं में सागर से घिरा हुआ है। इसमें 11 महापत्तन और 163 लघु पत्तन हैं और पोत परिवहन उद्योग, लगभग 4 मिलियन टन से अधिक की सीमा तक सामुद्रिक व्यापार और कारबार चला रहा है। भारत ने अपनी अर्थ नीति उदार बना दी है और वह विश्व अर्थ नीति में प्रवेश कर रही है, परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय पोतपरिवहन और समुद्रीय कारबार में अत्यधिक वृद्धि होगी। न्यायालयों की अधिकारिता से संबंधित समुद्रीय नावधिकरण विषयक विधियों के अभाव में, पोत परिवहन और सामुद्रिक व्यापार को अत्यधिक हानि पहुंचेगा।

2—1 M of LA&J/ND/99

अतः समुद्र की विधि से संबंधित सुसंगत अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों और संधियों को ध्यान में रखते हुए देशी आवश्यकता के अनुसार समुद्रीय पोत परिवहन और नौपरिवहन की बाबत विधि के संहिताकरण की तात्कालिक जरूरत है।

1.8. पूर्वोक्त अभिवर्धनों को ध्यान में रखते हुए आयोग का यह अभिमत था कि हालांकि संबद्ध प्रशासनिक विभाग ने उसके लिए कोई निर्देश करना आवश्यक नहीं समझा है, फिर भी नावधिकरण विषयक अधिकारिता के विभिन्न पक्षों पर विचार करना आवश्यक है। अतः आयोग ने स्वप्रेरणा से, समुद्री व्यापार और पोतपरिवहन की बढ़ती हुई आवश्यकता की पूर्ति के लिए नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित भारतीय विधि के संहिताबद्धकरण के लिए विधायी कार्य आरंभ करने के लिए अपनी रिपोर्ट पेश करने और सिफारिश करने का इस विषय पर निश्चय किया।

1.9. रिपोर्ट चार भागों में विभाजित है। खंड 1 प्रारंभिक प्रकृति का है जिसमें इंगलैण्ड और भारत में नावधिकरण विषयक अधिकारिता के ऐतिहासिक विकास पर विचार किया गया है। खंड 2 में आयोग ने अंतरराष्ट्रीय प्रसंविदाओं के प्रतिनिर्देश से नावधिकरण विषयक अधिकारिता के मूलभूत पक्षों पर विचार किया है। खंड 3 में नावधिकरण विषयक अधिकारिता की प्रकृति और विस्तार और नावधिकरण न्यायालयों की स्थापना की बाबत मुद्दों पर चर्चा की गई है, इसमें उन प्रक्रमों पर भी विचार किया गया है जो विधि को अद्यतन बनाने के लिए उठाए जाते हैं। खंड 4 में विधि आयोग के निष्कर्ष और उसकी सिफारिशें हैं। उपाबंध 8 में प्रस्तावित नावधिकरण विषयक विधेयक का प्रारूप अंतर्विष्ट है।

पाद टिप्पण—अध्याय 1

1. ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 517।
2. जे० टी० 1992 (2) एस० सी० 65।
3. ए० आई० आर० 1954 एस० सी० 517।
4. जे० टी० 1992 (2) एस० सी० 65।

अध्याय 2

साधारण पृष्ठभूमि

2.1. वाणिज्य पोत परिवहन के अंग्रेजी भाषाभाषी विश्व, विशिष्टतः उस परिप्रेक्ष्य में जो यूनाइटेड किंगडम और संयुक्त राज्य में विद्यमान है, में "नावधिकरण विषयक" और "सामुद्रिक" विधि पदों को प्रायः पर्यायवाची माना गया है तथापि सामुद्रिक विधि अधिक व्यापक और वर्णनात्मक निर्देश है जब कि "नावधिकरण" न्यायालयों में प्रशासित विधि को निर्दिष्ट करता है। इसके उद्भव में, सामुद्रिक विधि का विकास, समुद्र परिवहन के आचरण से हुआ है जो उतनी ही प्राचीन है जितनी कि मानव सभ्यता है। पोत को असभ्यता का अंतिम स्मृति चिह्न और सभ्यता का प्रथम स्मृति चिह्न बतलाया गया है। सुदूरवर्ती परिवहन और वाणिज्य साधारणतः, प्राचीनतम काल से आज तक की लंबी दूरी तय कर चुके हैं और नावधिकरण विषयक अधिकारिता, अपने अस्तित्व के लिए इस बात पर निर्भर है अन्तर्वलित वादहेतुक नावधिकरण या समुद्रीय विषय है या नहीं। मूलरूप से, विशिष्ट अधिकारिता का समुद्रीय प्रयोजन है और यह सामान्य विधि से भिन्न है। इसका सशक्त आंतरिक पक्ष है किन्तु इसमें अनेक देशों में स्वतंत्र परिवर्तन हो सकते हैं। नावधिकरण विषयक विधि की कतिपय विशेषताएं उन सभी देशों में विद्यमान हैं जहां पर वह विधि है और ऐसी अंतरराष्ट्रीय विशेषताओं पर साधारण न्यायालयों द्वारा गंभीर रूप से विचार किया जाता है।

2.2. नावधिकरण विषयक विधि शास्त्र प्रणाली ब्रिटिश उपनिवेशियों द्वारा कामन लॉ और साम्या के साथ संपूर्ण विश्व में ले जाया गया था और प्रायः सभी उपनिवेशों में समुद्रीय विधि के प्रशासन के लिए न्यायालय स्थापित किए गए थे। ये नावधिकरण विषयक न्यायालय तब तक उनको प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग करते रहे जब तक कि उन्हें संबद्ध देश के उपयुक्त विधान द्वारा प्रतिस्थापित नहीं कर दिया गया। तथापि, नावधिकरण विषयक अधिकारिता की कोई कानूनी परिभाषा नहीं है और यदि इसकी ठीक सीमाओं को परिभाषित करने का कोई प्रयास किया जाता है तो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं। प्राचीन इंगलिश लॉ के अधीन नावधिकरण विषयक अधिकारिता का कार्यक्षेत्र सीमित है।

2.3. भारत में, नावधिकरण विषयक अधिकारिता, विधिशास्त्र की एक अपरिचित शाखा है। यहां तक कि अधिवक्ता और न्यायाधीश भी विधि की इस शाखा की तकनीकों से परिचित नहीं है यद्यपि भारत काफी समय से समुद्रीय व्यापार करता आ रहा है किन्तु दुर्भाग्यवश नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित विधि का विकास नहीं हुआ है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है भारत ब्रिटिश नावधिकरण विषयक विधियों का अनुसरण करता रहा है और भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता भी ब्रिटिश संसद् द्वारा बनाई गई विधियों द्वारा विनियमित होती थी। चूंकि नावधिकरण विषयक अधिकारिता का आधार ब्रिटिश नावधिकरण विषयक विधियां हैं अतः इंगलैंड में नावधिकरण विषयक अधिकारिता के उद्भव और इतिवृत्त का सार प्रस्तुत करना आवश्यक और उचित होगा।

2.4. नावधिकरण विषयक अधिकारिता का मूल हेल्सबरीज ला आफ इंगलैंड[1] में संक्षिप्त रूप में खोजा जा सकता है। जिसके अनुसार, इंग्लैंड में भी, नावधिकरण विषयक विधिशास्त्र, यद्यपि नावधिकरण विषय अधिकारिता अति प्राचीन है, फिर भी यह विधि शास्त्र की एक अपरिचित शाखा है। दांडिक अधिकारिता रखने के परिणामस्वरूप लार्ड हाई ऐडमिरल के न्यायालय ने समुद्र से जुड़े सिविल साथ ही आपराधिक मामलों में सभी की सुनवाई आरंभ की और धीरे-धीरे देश के भीतर ज्वार जल से उद्भूत मामलों में कामन ला न्यायालयों की अधिकारिता में अनधिकृत हस्तक्षेप करना आरंभ किया जिसके कारण

रिचर्ड-2 के शासन काल में ऐडमिरल और उनके डिप्टी की अधिकारिता, सागर और महा-नदियों की मुख्य जल धारा पर की गई बातों तक परिरुद्ध करते हुए दो परिनियम पारित किए गए। इन परिनियमों द्वारा यथा समायोजित ऐडमिरैल्टी की दांडिक अधिकारिता 1537 तक बनी रही जब कि वह ग्रेंड सील के अधीन आयर और टर्मिनर के आयुक्तों को काफी हद तक, अंतरित कर दी गई जिनमें से एक नावधिकरण न्यायालय[2] का न्यायाधीश था। नावधिकरण न्यायालय की सिविल अधिकारिता रिचर्ड-2 के परिनियमों द्वारा अधिकथित सीमाओं के भीतर बनी रही, किन्तु इसके प्रयोग में नावधिकरण न्यायालय को कामन ला के उच्च न्यायालयों के साथ काफी लम्बा संघर्ष करना पड़ा। नावधिकरण न्यायालय ने उस प्रत्येक बात पर जो खुले समुद्र पर घटित हुई, अपनी सर्वोच्च और पूर्णतम अधिकारिता प्राख्यापित की किन्तु वह कामन ला न्यायालयों को मार्ग देने के लिए बाध्य था और धीरे-धीरे पूर्ण सीमा तक, जिसका उसके पहले दावा किया था, इसके द्वारा अधिकारिता का प्रयोग समाप्त हो गया। तिस पर भी इसने विलियम के शासन काल में घटी हुई अधिकारिता प्रति-धारित कर ली जिनमें अनेक महत्वपूर्ण विषय जैसे खुले समुद्र पर हुई टक्कर और अपकृत्य, पोतवंधक बदला आदि, शामिल थे। यह स्थिति नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिनियम, 1840[3] के पारित होने तक बनी रही जो इंगलैंड में "नावधिकरण विषयक उच्च न्यायालय की अधिकारिता को बढ़ाने और प्रथा को सुधारने के लिए" पारित किया गया था। यह अधिनियमों की शृन्खला का पहला अधिनियम था जिसने अधिकारिता बढ़ाई या परिभाषित की जिनमें से नवीनतम अधिनियम, सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 है.............पिछले सौ वर्षों में इंगलीश सामुद्रिक विधि, यद्यपि अलग-अलग न्यायालयों में विकसित हुई और कामन ला की संकल्पनाओं में परिवर्तनों द्वारा अत्यधिक प्रभावित होती रही और आज की बाबत साधारण विधि से पूर्णतः पृथक् विधि की एक प्रणाली गठित करने वाली मानी जाती है तो इससे भूल हो सकती है। आधुनिक अंतरराष्ट्रीय विधि में, यह मान लिया गया है कि नावधिकरण विषयक न्यायालयों की अधिकारिता, खुले समुद्र पर विदेशी पोतों[4] और साथ ही खुले समुद्र पर किए गए क्षतिकारक कृत्यों, दोनों पर है। दूसरे शब्दों में, अब उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता का विस्तार सभी पोतों या विमानों पर है चाहे वे रजिस्ट्रीकृत हों या न हों और उनके स्वामियों का निवास या अधिवास चाहे जहां भी हो और सभी दावों के संबंध में भी है वे चाहे जहां पर उद्भूत हो रहे हों। तथापि अधिकारिता का विस्तार अधिकारिता के प्रयोग की पद्धति को शासित करने वाले नियमों के अध्यधीन है।[5] साधारणतः न्यायालय की अधिकारिता टक्कर और अन्य वैसे ही मामलों में भी निर्बन्धित है जहां कृत्य व्यक्तिबन्धी है..........। सामुद्रिक कृत्यों की अन्तरराष्ट्रीय प्रकृति और सबंबन्धी अग्रसर होने का अधिकार त्वरित रूप से अधिकारिता और विवादों का संघर्ष पैदा कर देता है कि किस मंच पर दावों की सुनवाई की जानी चाहिए।[6]

2.5. **भारत में स्थिति.**—जहां तक भारत का संबंध है, नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग केवल कुछ भारतीय उच्च न्यायालयों द्वारा किया जा रहा है क्योंकि यह विषय अभी भी प्रचलन में न रह गए इंगलिश ऐडमिरैल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861 द्वारा शासित हो रहा है जो आरंभ में (इंगलिश) नावधिकरण विषयक औपनिवेशिक न्यायालय अधिनियम, 1890 द्वारा भारत पर लागू किया गया था और फिर नावधिकरण विषयक औपनिवेशिक न्यायालय (भारत) अधिनियम, 1891 (1891 का अधिनियम संख्यांक 16) द्वारा भारत द्वारा[7] अंगीकार कर लिया गया था। जहां तक नावधिकरण विषयक अधिकारिता में दांडिक अपराधों का संबंध था, भारत पर नावधिकरण विषयक अपराध (उपनिवेश) अधिनियम, 1849 का विस्तार किया गया था, किन्तु उनका विचारण करने की शक्ति केवल उच्चतम न्यायालय[8] को थी। ऐसा नावधिकरण विषयक अधिकारिता (भारत) अधिनियम, 1860[9] द्वारा किया गया था।

2.6. इंगलैंड में सुप्रीम कोर्ट ज्यूडिकेचर ऐक्ट, 1773 पारित किए जाने के पश्चात् भारतीय विधान मंडल द्वारा समय-समय पर, नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित अनेक अधिनियम पारित किए गए थे, जिनका परिणाम यह हुआ कि विधि को निर्देशित

किया जाना लगातार कठिन होता गया और उनके समेकन की जरूरत अत्यधिक आवश्यक हो गई। यद्यपि अनेक प्रयास किए गए थे, फिर भी विधिक और संवैधानिक कठिनाइयों के कारण सभी प्रयास असफल हो गए। इसके लिए दो प्रमुख योगदायी कारक थे। पोत परिवहन की बाबत विधान बनाने की भारतीय विधान मंडल की सीमित शक्तियां और यह तथ्य कि इस विषय पर ब्रिटिश परिनियम विधि का एक भाग भारत पर लागू होता था और किसी भारतीय अधिनियमिति या उस विधि से सामंजस्य होना आवश्यक था। परिनियम विधि पुनरीक्षण समिति द्वारा 1921–22 में वाणिज्य पोत परिवहन संबंधी भारतीय विधि को संहिताबद्ध करने का एक प्रयास किया गया था जिसने यह विनिश्चित किया कि तत्काल उसके समेकन का, न कि उसके पुनरीक्षण का, प्रयास किया जाना चाहिए। परिणाम था भारतीय वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1923, जो लगभग 30 अधिनियमों के साथ (अधिनियम की अनुसूची में उल्लिखित) निरसित कर दिया गया था। उक्त अधिनियम भी समय-समय पर संशोधित किया गया और उन अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों के उपबंधों को विशेष रूप से क्रियान्वित करने के लिए, जिन्हें भारत द्वारा अनुसमर्थित किया गया है, इसे वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 (1958 का 44) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। 1958 के अधिनियम का उद्देश्य मुख्य रूप से "राष्ट्रीय हित को पूरा करने के लिए सर्वोत्तम उपयुक्त रीति से विकास का पोषण करना और उस प्रयोजन के लिए एक राष्ट्रीय पोत परिवहन बोर्ड और एक पोत परिवहन विकास निधि की स्थापना करना भारतीय पोतों के रजिस्ट्रीकरण के लिए उपबंध करना और साधारणतः वाणिज्य पोत परिवहन से संबंधित विधि का संशोधन और समेकन करना है। यद्यपि अधिनियम के भाग 10, भाग 10क और भाग 10ख, टक्करों, समुद्र पर दुर्घटनाओं और जल प्रदूषण के लिए दायित्व को निर्दिष्ट करते हैं, फिर भी, नावधिकरण विषयक अधिकारिता की समस्या अनसुलझी छोड़ दी गई है और अभी भी भूतपूर्व ब्रिटिश अधिनियमों द्वारा शासित होता है जो, संविधान के अनुच्छेद 372 के फलस्वरूप, इस तथ्य के बावजूद प्रवृत्त बने हुए हैं कि उनमें से कुछ (जैसे 1961 का अधिनियम) इंगलैंड में पहले ही निरसित कर दिए गए हैं। इस प्रकार, "नावधिकरण विषयक" अधिकारिता पर 1840 और 1861 का ब्रिटिश ऐडमिरैल्टी कोर्ट ऐक्ट ही है जो कानूनी आधार का उपबंध करता है यद्यपि तब से अब तक उस विषय पर अनेक अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय भी आ गए हैं।

2.7. **विधि की असंतोषप्रद स्थिति**—उपर्युक्त संक्षिप्त ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह प्रचुरतः स्पष्ट कर देता है कि विधिशास्त्र की इस शाखा में भारतीय विधि की स्थिति असंतोषप्रद है। नावधिकरण विषयक मामलों पर कार्रवाई करने के लिए न्यायालयों को अधिकारिता को अधितः सारतः परिभाषित किए जाने की आवश्यकता है। सामुद्रिक विधि के विभिन्न पक्षों पर विद्यमान विभिन्न परिनियमों का पुनरीक्षण किया जाना और समुचित रूप से संशोधित किया जाना आवश्यक है। कामन ला और साथ ही, निर्णयविधि में यथा प्रक्षेपित, न्यायाधीश निर्मित विधि, का विश्लेषण किया जाना और जहां आवश्यक हो, संहिताबद्ध किया जाना आवश्यक है। विभिन्न उन अन्तरराष्ट्रीय करारों, नयाचारों और अभिसमयों को, भारत जिनका पक्षकार या हस्ताक्षरकर्ता या सहमतिदाता राज्य है, संकलित और समेकित किया जाना है। विधि की इस शाखा को अद्यतन करने और अन्तरराष्ट्रीय नियमों और अभिसमयों तथा अन्य देशों में हुए विकास के अनुरूप लाने के लिए अत्यधिक आधारिक कार्य किया जाना है। निरपवादितः, भारत में, पोत परिवहन की विनियामक विधि पोत परिवहन विधि पोत परिवहन अधिनियम, 1958 में अन्तर्विष्ट है किन्तु यह नावधिकरण विषयक अधिकारिता के संबंध में व्यवहृत नहीं है।

2.8. **वर्तमान विस्तार परिसीमित है**—नावधिकरण विषयक विधि की द्योतक है। यह भारतीय वहन पत्र अधिनियम, 1856, भारतीय समुद्र द्वारा माल वहन अधिनियम, 1925, वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958, बहुविधि परिवहन अधिनियम, 1993 जैसे विशेष परिनियमों और समुद्री बीमा अधिनियम, 1963, भारतीय संविदा अधिनियम, 1872, साक्ष्य अधिनियम, 1872, भारतीय दंड संहिता, 1860, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973

और कंपनी अधिनियम, 1956 जैसे साधारण परिनियमों में शामिल क्षेत्रों को आवेष्टित करती है और यह कामन ला तथा विधि के साधारण सिद्धान्त जैसे अपकृत्य विधि पब्लिक और प्राइवेट अन्तरराष्ट्रीय विधि को भी आवेष्टित करती है। यह पत्तनों से संबद्ध मामलों जैसे भारतीय पत्तन अधिनियम, 1908 और महापत्तन अधिनियम, 1963 को भी आवेष्टित करती है। यह माल के आयात या निर्यात के संबंध में पोतों, माल और व्यक्तियों को प्रभावित करने वाले विभिन्न विनियामक उपायों को अन्तर्विष्ट करने वाले सीमाशुल्क अधिनियम, 1962 द्वारा व्यवहृत मामलों को भी अपनी परिधि में ले लेती है; इसमें समुद्री सीमाओं[10] को स्पर्श करने वाले और नियोजन तथा श्रम आदि को शासित करने वाले कानूनी उपबंध भी शामिल हैं। इन सभी क्षेत्रों को लागू विधि के समेकन का कार्य अति विशाल है और कम समय के भीतर इसे प्रभावी रूप से, उसकी समग्रता में पूरा नहीं किया जा सकता है। आयोग का यह अभिमत है कि अधिक व्यावहारिक और युक्तियुक्त अभिगम विधि को विभिन्न चरणों में संहिताबद्ध करना होगा। अतः आयोग प्रथमतः नावधिकरण विषयक मामलों से संबद्ध विधि के संहिताकरण की ही प्रस्थापना करता है। अतः यह रिपोर्ट नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित विवाद्यकों तक ही सीमित है।

पाद टिप्पण—अध्याय 2

1. हेल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड, खंड 1 (4 था संस्करण) (पुनः मुद्रित) पैरा 301–304।
2. समुद्र पर अपराध अधिनियम, 1536 (निरसित)।
3. नावधिकरण विषयक अधिकारिता अधिनियम, 1931 (अब निरसित)।
4. अपवाद, विदेशी साम्राज्यों के पोत हैं, हेल्सबरीज लाज आफ इंगलैंड (चौथा संस्करण) (पुनः मुद्रित) पैरा 304।
5. यह परिनियम द्वारा हो सकता है जैसे कि सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1980 (यू०के०) या अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों द्वारा जैसे कि समुद्रगामी पोतों की गिरफ्तारी या "टक्कर के विषयों में सिविल अधिकारिता से संबद्ध नियम" से संबंधित अभिसमय।
6. समुद्र सिविल न्यायालय मैनुअल, 6वां संस्करण, पृष्ठ 874–881।
7. समुद्र सिविल न्यायालय मैनुअल, 6वां संस्करण, पृष्ठ 882–3 इस अधिनियम में मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास उच्च न्यायालयों को नावधिकरण विषयक औपनिवेशिक न्यायालय घोषित किया था।
8. ये मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास सुप्रीम कोर्ट में।
9. इन दोनों अधिनियमितियों से उद्धरण परिशिष्ट में दिए गए हैं।
10. जे०टी० 1992–3, एस० सी० 65।

खंड 2

अध्याय 3

इंगलैंड में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का ऐतिहासिक विकास

3.1. नावधिकरण विषयक विधि, सिविल और दांडिक प्रकृति के समुद्री विषयों का विनियमन करने वाली विधि शास्त्र की एक शाखा है और यह समुद्री विधि का किसी न्यायालय या अधिकरण मे उसकी विशिष्ट प्रक्रिया द्वारा प्रशासन करना अनुध्यात करती है। इस अधिकारिता का अंतिम स्रोत समुद्र की आरंभिक विधि में मिलता है जो साधारण रूप से वाणिज्यिक राष्ट्रों की विधि थी। इंग्लैंड, एक द्वीप होने के कारण, सदैव समुद्र द्वारा वाणिज्यिक कारबार में लगा रहा है। चूंकि भारतीय नावधिकरण विषयक विधि विकसित हुई है। चूंकि भारतीय नावधिकरण विषयक अधिकारिता, इंगलिश ला पर आधारित है अत: उस देश में नावधिकरण विषयक अधिकारिता के संक्षेप में निर्देशित करना उचित होगा।

3.2. मध्यकाल के दौरान इंगलैंड में लार्ड हाई ऐडमिरल और ब्रिटिश द्वीप समूह के आसपास समुद्र के भिन्न-भिन्न भागों के लिए नियुक्त किए गए अन्य ऐडमिरलों को उनके कमान के जलयानों पर अनुशासनिक शक्तियां होती थीं। इसके अतिरिक्त एक तरह से वे समुद्री मजिस्ट्रेटों के रूप में कार्य करते थे। वे मात्र समुद्रीय अधिकारी थे जिन्हें प्राधिकार और शक्ति दोनों ही प्राप्त थे। वे प्रथा, रूढ़ि और साम्या के अनुसार विवादों को अवधारित करते थे। साधारण तौर पर वे "पुरस्कार" के रूप में मानी गई शत्रु की संपत्ति की पकड़ की बाबत विवादों को अवधारित करते थे। अंतत: इन विवादों में से एक श्रेष्ठ व्यक्ति उद्‌भूत हुआ जो लार्ड हाई ऐडमिरल का डिप्टी होने से, दांडिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले इंगलिश कोर्ट आफ एडमिरैल्टी का नियुक्त किया गया न्यायाधीश बन गया जो युद्ध के समय प्राइज कोर्ट के न्यायाधीश के रूप में कर्तव्यों का निर्वहन करता और कतिपय समुद्री वाद हेतुकों में अधिकारिता का प्रयोग करता था। वे दोनों अधिकारिताएं अंततोगत्वा लार्ड हाई ऐडमिरल और उसके अनुयायियों के लिए बिल्कुल पृथक् हो गई। यह संक्षेप में, हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी अधिकारिता की उत्पत्ति का निष्कर्ष है जो सदियों तक इंगलैंड के कामन ला और चांसरी कोर्ट से साथ-साथ संघर्ष करता रहा। जिनमें से एक इसकी अधिकारिता को बढ़ाना और दूसरा उसे सीमित करना चाहता था।

3.3. इंगलैंड के हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी और कामन ला कोर्ट के बीच इस प्रतिद्वंदिता पर अंतत: ब्रिटिश संसद का ध्यान गया। वर्ष 1389 में ब्रिटिश संसद ने ऐडमिरल्ल और डिप्टी की अधिकारिता से संबंधित और हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी की सीमाएं भी विहित करते हुए एक अधिनियम (13 रिचर्ड 2 [1389]) पारित किया। अधिनियम में यह अधिकथित था कि ऐडमिरल और उसके डिप्टी राज्य के भीतर की गई किसी बात पर हस्तक्षेप नहीं करेंगे, किंतु केवल समुद्र पर की गई किसी बात पर हस्तक्षेप करेंगे। पूर्णत: और अनन्यत: समुद्र पर न की गई बातों पर हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी के हस्तक्षेप न करने वाले इस विधान के बावजूद नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिकारिता के प्रतिषिद्ध क्षेत्र पर अनधिकार प्रवेश करते रहे। ब्रिटिश संसद ने एक दूसरा परिनियम (नावधिकरण अधिकारिता अधिनियम, 1391) पारित किया, जिसमें यह स्पष्ट किया गया कि देश की सीमाओं के भीतर और साथ ही जल पर तथा समुद्र में पोत भंग से उत्पन्न होने वाली सभी प्रकार की संविदाओं, अभिवाकों और झगड़ों और अन्य सभी बातों पर ऐडमिरल के न्यायालय का किसी भी रीति से संज्ञान, शक्ति या अधिकारिता नहीं होगी, इसके बजाय ऐसी सभी प्रकार की संविदाएं, अभिवाक् और झगड़ों और देशों के क्षेत्र के भीतर और साथ ही जल तथा यथोक्त समुद्र में पोत भंग के मामलों पर देश की विधि द्वारा विचारण, विचारण अवधारण विचार और अनुतोष,

1—1 M of L&J/ND/99

लिया जाएगा और ऐडमिरल या उसके लेफ्टिनेंटों के समक्ष या उनके द्वारा नहीं इस अधिनियम ने यह बात स्पष्ट कर दी कि हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी की अधिकारिता खुले समुद्र पर की गई बातों तक ही परिसीमित थी और किसी देश के क्षेत्र के भीतर उत्पन्न होने वाली बातों पर कार्रवाई करने की उसकी आत्यंतिकतः कोई अधिकारिता नहीं थी। तथापि यह अधिनियमिति अधिकारिता के संघर्ष का अपवर्जन कर पाने में सफल नहीं हो पाई।

3.4. नावधिकरण विषयक न्यायालय की अधिकारिता निहित करते हुए 1648 में एक अध्यादेश जारी किया गया था, किन्तु वह अपास्त कर दिया गया और उसके पश्चात् हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी का लगभग 2 शताब्दियों तक कोई महत्व नहीं रह गया था जब तक कि अठारहवीं शताब्दी में लार्ड स्टोवेल की विद्वत्ता और योग्यता ने इस न्यायालय को सर्वोच्च महत्व[2] की स्थिति में नहीं पहुंचा दिया। वर्ष 1840 में ब्रिटिश संसद् में हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी की व्यवस्था को सुधारने और उसकी अधिकारिता को बढ़ाने के लिए नावधिकरण विषयक अधिकारिता अधिनियम, 1840 (3 और 4 विक्टो० सी० 65, जिसे इसके पश्चात् 1840 का अधिनियम कहा गया है) पारित किया। इस अधिनियम की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी, देश के भू-भाग के भीतर उत्पन्न होने वाली बातों का भी वैसे ही संज्ञान ले सकता था जैसे कि कामन ला कोर्ट, 1840 के अधिनियम में अन्य बातों के साथ-साथ किसी पोत द्वारा प्राप्त नुकसान की बाबत दावों के लिए उपबंध किया।

3.5. वर्ष 1861 में ब्रिटिश संसद् में इंडियन ऐडमिरैल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861 अधिनियमित किया। इस अधिनियम ने अधिकारिता के अभिवर्धन और हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी के बीच अधिकारिता संबंधी विरोध को दूर करने का प्रयास किया। 1861 के अधिनियम द्वारा पुरःस्थापित महत्वपूर्ण परिवर्तनों में से एक यह था कि हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी, अपनी अधिकारिता पोत द्वारा हुए नुकसानों के मामलों तक ही अपनी अधिकारिता परिसीमित रखने के बजाय, अब "पोत द्वारा किए गए नुकसान" के संबंध में भी दावों को ग्रहण कर सकता था। यह नोट करना महत्वपूर्ण है कि 1840 के अधिनियम के अधीन "पोत द्वारा हुए नुकसान" की बाबत हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी, कामन ला और चांसरी न्यायालयों की अधिकारिता समवर्ती थी किन्तु 1861 के अधिनियम के अधीन "पोत द्वारा किए गए नुकसान" के संबंध में हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी की अधिकारिता अनन्य थी। 1861 के अधिनियम में यह और उपबंध था कि खुले समुद्र पर किसी पोत द्वारा किए गए नुकसान के मामलों में, व्यथित पक्षकार को या तो सर्वबंधी कार्रवाई के लिए या व्यक्तिबंधी कार्रवाई के लिए हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी के समक्ष जाने का विकल्प प्राप्त था। इस अधिनियम की दूसरी विशेषता यह थी कि धारा 6 द्वारा उसने ऐडमिरैल्टी कोर्ट को इंग्लैंड या वेल्स के किसी भाग में स्थोरा के दावों की बाबत विदेशी पोतों पर भी अधिकारिता की उपधारणा के लिए सशक्त किया किन्तु यह बाह्य स्थोरा को लागू नहीं होता था।

3.6. ज्यूडिकेचर ऐक्ट, 1873 ने जो 1875 में प्रवृत्त हुआ, हाई कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी को हाई कोर्ट आफ जस्टिस के साथ विलीन कर दिया जिससे ऐडमिरैल्टी ला, कामन ला और इक्विटी का समेकन हो गया। 1861 के आगत स्थोरा के संबंध में दावों तक ऐडमिरैल्टी कोर्ट की अधिकारिता सीमित करने वाले उपबंध, न्याय प्रशासन अधिनियम, 1920 द्वारा हटा दिए गए। उस अधिनियम द्वारा हाई कोर्ट की अधिकारिता का विस्तार निम्नलिखित तक किया गया :

(क) किसी पोत के उपयोग या किराए से संबंधित करार से उद्भूत कोई दावा;

(ख) किसी पोत में माल के वहन से संबंधित कोई दावा; और

(ग) किसी पोत में वहन किए जा रहे माल की बाबत अपकृत्य में कोई दावा।

3.7. 1861 के अधिनियम और पश्चात्वर्ती अधिनियमितियों को सुप्रीम कोर्ट आफ ज्यूडिकेचर (कन्सालिडेशन) ऐक्ट, 1925 द्वारा समेकित किया गया था। इस अधिनियम ने हाई कोर्ट की सभी पीठों में, नावधिकरण अधिकारिता निहित करके, न्यायालय को सर्वबंधी कार्यों के अतिरिक्त, ऐसे किसी व्यक्ति बंधी दावा को स्वीकार करने के लिए सशक्त किया है जो हाई कोर्ट की किसी अन्य पीठ में लाया जा सकता था। न्याय प्रशासन अधिनियम, 1956 द्वारा नावधिकरण विषयक अधिकारिता को और व्यापक तथा पुनःपरिभाषित किया गया है।

3.7. (क) 1925 का अधिनियम, सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 द्वारा अधिक्रान्त किया गया। संसद् ने सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट आफ ज्यूडिकेचर के संशोधनों और अन्य अधिनियमितियों को समेकित करने तथा कतिपय अप्रचलित और अनावश्यक अधिनियमितियों को निरसित करने के लिए 1981 का अधिनियम अधिनियमित किया था। अधिनियम की धारा 20 हाई कोर्ट की नावधिकरण विषयक अधिकारिता को परिभाषित करती है तथा धारा 21 व 22 नावधिकरण विषयक अधिकारिता की प्रक्रिया, पद्धति और पक्ष के संबंध में है। धारा 24 समुद्री और नावधिकरण विषयक अधिकारिता में आमतौर पर प्रयुक्त विभिन्न अभिव्यक्तियों और शब्दों को परिभाषित करती है। उस अधिनियम में अन्तर्विष्ट उपबंधों ने नावधिकरण विषयक मामलों में हाई कोर्ट की अधिकारिता को व्यापक बनाकर महत्वपूर्ण परिवर्तन किए हैं। धारा 20, 21 और 22 के उपबंधों की विस्तृत रूप से चर्चा करना आवश्यक नहीं है किन्तु यह नोट करना आवश्यक है कि वह स्थिति, जो अन्ततः इंगलैंड में प्रकट हुई, यह है कि हाई कोर्ट की अधिकारिता सभी पीठों में निहित है यद्यपि व्यवहार में नावधिकरण विषयक कार्रवाइयां क्वीन बेंच डिवीजन को समनुदेशित हैं और नावधिकरण विषयक न्यायालयों द्वारा कार्रवाई की जाती है। यह इस बात को भी सुनिश्चित करता है कि व्यक्तिबंधी कार्रवाई की प्रायिक अपेक्षाएं अर्थात् प्रतिवादी का आभ्यासिक निवास स्थान या कारबार का स्थान अथवा वादहेतुक का संबंध इंगलैंड या वेल्स से होने पर या इंगलिश हाई कोर्ट में संबद्ध विषय या उस न्यायालय की अधिकारिता में प्रतिवादी को पेश किया जाना। सर्वबंधी नावधिकरण विषयक कार्रवाई के रूप में आरंभ की गई किसी कार्यवाही को लागू नहीं होते हैं। विधि जैसी वह इस समय है ऐसे अनेक दावों में सर्वबंधी रूप में कार्रवाई करने के अधिकार का विस्तार करती है जो समुद्रीय धारणाधिकार को उत्पन्न नहीं होने देते। इसी प्रकार अब हाई कोर्ट की नावधिकरण विषयक अधिकारिता का व्यक्तिबंधी कार्रवाई द्वारा सभी मामलों में अवलंब लिया जा सकता है; यद्यपि अधिकारिता का प्रयोग अधिकारिता के भीतर कार्यवाहियों की सर्विस से संबद्ध न्यायालय के नियमों के प्रवर्तन द्वारा निरुद्ध की गई है।

3.8. **ई ई सी अभिसमय**—स्थिति को अद्यतन बनाने के लिए उल्लेख किया जा सकता है कि सिविल ज्यूरिसडिक्शन ऐंड जजमेंट्स ऐक्ट, 1982 ने इंगलिश और स्कॉटिश ला में सिविल और वाणिज्यिक विषयों में अधिकारिता और नियमों का प्रवर्तन संबंधी यूरोपियन आर्थिक आयोग अभिसमय अधिनियमित किया है।

3.9. परिनियमों की पूर्वोक्त निर्देशों की श्रृंखला से किसी को यह भ्रान्त विश्वास नहीं कर लेना चाहिए कि नावधिकरण विषयक न्यायालयों में प्रशासित विधि केवल परिनियमों से ही उपाप्त और उन्हीं तक परिसीमित नहीं है। "इंगलिश न्यायालयों में निहित व्यापक अधिकारिता, रूढ़ि और प्रथा द्वारा विकसित समुद्री विधि के प्राचीन सिद्धांतों और साथ ही पश्चात्वर्ती परिनियमों से व्युत्पन्न हुई हैं जिनमें से अनेक परिनियमों ने अनेक सामुद्रिक देशों में[3] व्यवहृत विधियों के एकीकरण संबंधी अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों के उपबंधों को शामिल कर लिया है।" हाल्सबर्थ के शब्दों में, "आधुनिक विधान ने कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी को अनेक ऐसी शक्तियां और अधिकार अधिकारिता पुनः प्रदान कर दी है जिनसे वह सत्रहवीं शताब्दी में वंचित कर दिया गया था। ....किन्तु नावधिकरण विषयक विधि ने अपनी वह अंतरराष्ट्रीय प्रकृति खो दी है जो किसी समय उसके पास थी। यह अनिवार्यतः इंगलिश ला है। वह विधि जो इंगलैंड के ऐडमिरैल्टी कोर्ट द्वारा प्रशासित की जाती है, इंगलिश मैरिटाइम विधि है। यह देश की सामान्य नगरपालिक विधि नहीं है अपितु यह वह विधि है जिसे इंगलिश ऐडमिरैल्टी

न्यायालय ने, या तो संसद् के अधिनियम द्वारा या पुनरावृत्त विनिश्चयों, परंपराओं और सिद्धांतों द्वारा, इंगलिश मैरिटाइम विधि के रूप में अंगीकार किया है। रोड़ियन्स की विधियां या ओलेरन की विधि, या विस्बाई विधि या हैन्सटाउन्स विधि अपने आप में इंगलैंड की ऐड-मिरैल्टी विधि का भाग नहीं है ......किन्तु उनमें सामुद्रिक व्यवहार के ऐसे अनेक सिद्धांत और विवरण अंतर्विष्ट हैं जो डाइजेस्ट, और फ्रेंच में तथा अन्य अध्यादेशों में पाए जाने वाले सिद्धांतों के साथ इंगलिश कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी के न्यायाधीशों द्वारा उस समय प्रयोग में लाए जाते थे जब वे अपने न्यायालयों में सिद्धांतों और व्यवहार को रूप देने और गढ़ने का प्रयास कर रहे थे।"[4]

पाद टिप्पण—अध्याय 3

1. इसकी खोज को यू-बामन, जस्टिस द्वारा एम वी एलिजाबेथ एण्ड अदर्स में अपने विद्वत्तापूर्ण निर्णय में की गई है और जानकारी के लिए, होल्सवर्थ ए हिस्टरी आफ इंगलिश ला, वाल्यूम 1, 5 और 8 ऐडमिरैल्टी प्रैक्टिस 5वां संस्करण, मार्सडेन; सेलेक्ट प्लीज आफ दि कोर्ट आफ ऐडमिरैल्टी, वाल्यूम 1 और 2 तथा ला एण्ड कस्टम आफ दि सी वाल्यूम 1 और 2 बेनेडिक्ट आन ऐडमिरैल्टी, 6वां संस्करण, वाल्यूम 1 और गिल्मोर एण्ड ब्लैक ला आफ ऐडमिरैल्टी, 1957 के प्रति निर्देश किया जा सकता है।

2. रास्को, ऐडमिरैल्टी प्रैक्टिस, 5वां संस्करण, पृ० 14, जे टी 1992 (2) एस सी 65 पैरा 34 में उधृत।

3. एलिजाबेथ एण्ड अदर्स बनाम हारवन इन्वेस्टमेंट आदि ज टी 1992(2)एससी 65 पृ० 32।

4. ए हिस्ट्री आफ इंगलिश ला, वाल्यूम 1, पृष्ठ 558-59

अध्याय 4

भारत में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का विकास

4.1. प्रथम चार्टर मद्रास, मुंबई और कलकत्ता के नगरों में महापौर न्यायालय, स्थापित कर के महापौर के न्यायालय, जो प्रत्येक एक महापौर और नौ पौर मुख्य से मिलकर बना है, यूनाइटेड ईस्ट इंडिया कंपनी (पुरानी और नई कंपनियों को मिलाने के पश्चात्) को 1726 में अनुदत्त किया गया था। महापौर का न्यायालय कोर्ट आफ रिकार्ड था और इसे सभी सिविल वादों, अनुयोजनों और दलीलों को अपने अपने नगरों के भीतर विचारण, सुनवाई और अवधारित करने की अधिकारिता होती थी। गवर्नर और परिषद् के पांच ज्येष्ठ व्यक्तियों को पीस के त्रैमासिक सत्र करने की शक्ति सहित जस्टिसस आफ दि पीस नियुक्त किया जाता था और वे उक्त नगरों के भीतर या उनके दस मील के भीतर किए गए सभी अपराधों (घोर देशद्रोह को छोड़कर) के विचारण के लिए कोर्ट आफ रिकार्ड गठित करते थे। 1753 के चार्टर द्वारा महापौर के न्यायालय, त्रैमासिक सत्र के न्यायालय, आदि उन के बीच अधिकारिता के पुनर्वितरण के साथ पुनःस्थापित किए गए थे। 1773 में, ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थिति की जांच करने के लिए नियुक्त की गई सचिव की समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। यह रिपोर्ट "दि रेग्युलेशन ऐक्ट" पारित करने का कारण बनी। 13 जी ई ओ III, सी—63 इस अधिनियम में हिज मेजस्टी को फोर्ट विलियम, बंगाल में सुप्रीम कोर्ट आफ जुडिकेचर स्थापित करने के लिए प्राधिकृत किया जिसमें एक मुख्य न्यायमूर्ति और तीन न्यायाधीश थे, जो सभी सिविल, दांडिक, नावधिकरण और चर्च संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करते। फोर्ट विलियम स्थित सुप्रीम कोर्ट आफ जुडिकेचर, कोर्ट आफ रिकार्ड भी बनाया गया था। तदनुसार 26 मार्च, 1774 के चार्टर द्वारा एक कोर्ट आफ रिकार्ड स्थापित किया गया जिसका नाम "सुप्रीम कोर्ट आफ जुडिकेचर, फोर्ट विलियम, बंगाल" रखा गया, जिसमें एक मुख्य न्यायमूर्ति और तीन अन्य न्यायाधीश थे। इस प्रकार फोर्ट विलियम स्थित सुप्रीम कोर्ट आफ जुडिकेचर ने 1774 से नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करना आरंभ किया। 26 मार्च, 1778 के चार्टर के खंड 26 में यह घोषित किया गया कि बंगाल में फोर्ट विलियम स्थित सुप्रीम कोर्ट आफ जुडिकेचर, बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों, देहातों या जनपदों और अन्य आश्रित राज्यक्षेत्रों तथा उनके पार्श्वस्थ द्वीपों में और उनके लिए "नावधिकरण न्यायालय" होगा। सुप्रीम कोर्ट को सभी वाद हेतुकों, सिविल और सामुद्रिक तथा संविदाओं, ऋणों, विनियमों, बीमा पालिसियों, लेखाओं, चार्टर, पक्षकारों, करारों, पोतों के लदान के सभी अभिवाकों को और उन सभी विषयों और संविदाओं को, जो किसी भी रीति से, चाहे वह जो भी हो, भाड़े या किराए पर लिए और दिए गए, पोतों के लिए देय रकम, परिवहन रकम, सामुद्रिक भोगाधिकार या बाटमरी (पोत बंध) से संबद्ध थे और सभी सिविल, तथा सामुद्रिक मामले चाहे वे कोई भी क्यों न हों जो भाड़ा या किराए पर लिए और दिए गए पोतों के लिए देय रकम, परिवहन रकम, सामुद्रिक भोगाधिकार या बाटमरी से संबद्ध थे, और सभी सिविल तथा सामुद्रिक विषय, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, जो ऐसे व्यापारियों, ऐसे पोतों और जलयानों के स्वामियों और स्वत्वधारियों के बीच उत्पन्न हों, जो पूर्वोक्त अधिकारिता के भीतर नियोजित या उपयोजित होते हों अथवा अन्य संविदाकृत किए गए हुए या आरंभ किए गए पक्षों के बीच इन विषयों से संबंध हो अथवा जो संपूर्ण बंगाल, बिहार और उड़ीसा तथा उन पार्श्वस्थ आश्रित राज्यक्षेत्रों के समुद्र या सार्वजनिक नदियों, या पत्तनों घाटों, बन्दरगाहों और अतिप्रवाह के स्थानों, समुद्र के ज्वार भाटा तथा उच्च जल स्तर के भीतर, उन पर या उनके समीप उद्भूत हों, जिनकी संज्ञेयता नावधिकरण विषयक अधिकारिता के संबंध में वैसी ही थी जैसी कि वह इंग्लैंड होती और प्रयोग की जाती, का संज्ञान करने, सुनवाई करने, विचारण करने और उन्हें अवधारित करने की

पूर्ण शक्ति और प्राधिकार था। चार्टर के खंड 27 ने सुप्रीम कोर्ट को अधिकारिता की पूर्वोक्त सीमाओं के भीतर खुले समुद्र पर किए सामुद्रिक अपराधों की बाबत इंगलैंड में नावधिकरण की विधि और रूढ़ियों के अनुसार अधिकारिता का प्रयोग करने, सिविल और नावधिकरण विधियों के अनुसार अपराधियों को दंडित करने और उन परिबद्ध तथा निर्मुक्त करने और पोतों, व्यक्तियों, माल आदि का संज्ञान करने तथा उन्हें बन्दी बनाने की पूर्ण शक्ति और प्राधिकार प्रदान किया। खंड 27 में यह और अधिकथित था कि ऐसे वाद हेतुक या हेतुकों में कार्यवाहियां 27 मार्च, 1774 के उक्त चार्टर के क्रम और आदेश के अनुसार होनी थी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी उपबंध था कि सामुद्रिक वाद हेतुकों में अधिकारिता का विस्तार सम्राट के उन्हीं प्रजाजनों तक था जो किंगडम या बंगाल, बिहार और उड़ीसा के प्रान्तों में निवास कर रहे थे और जो व्यक्ति कंपनी अथवा किसी प्रजाजन की सेवा में थे। यही स्थिति मुम्बई और मद्रास में भी थी।

4.2. 1861 का अधिनियम (स्टेट्यूट 24 और विक्ट अध्याय 104) भारत में हाई कोर्ट्स आफ जुडिकेचर स्थापित करने के लिए ब्रिटिश पालियामेंट द्वारा अधिनियमित किया गया था जो अन्य बातों के साथ-साथ हर मैजस्टी को यूनाइटेड किंगडम की ग्रेट सील के अधीन लेटर्स पटेंट द्वारा कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास में हाई कोर्ट्स आफ जूडिकेचर स्थापित करने के लिए प्राधिकृत करता है। अधिनियम की धारा 9 ने, अधिनियम के अधीन स्थापित हाई कोर्ट्स ऐसी सभी सिविल, दांडिक नावधिकरण संबंधी और उप-नावधिकरण संबंधी वसीयती, निर्वसीयती और विवाह विषयक अधिकारिता आरंभिक और अपीली और ऐसी सभी शक्तियां और प्राधिकार जो उनकी अपनी अपनी प्रेसिडेन्सियों में न्याय के प्रशासन के संबंध में और उनके बारे में जो हर मैजस्टी लेटर्स पेटेंट द्वारा अनुदत्त या निदेशित करें, प्रयोग करने के लिए प्राधिकृत किया। 1862 के लेटर्स पेटेंट का खंड 31 अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंध करता है कि हाई कोर्ट्स को ऐसी सिविल और सामुद्रिक अधिकारिता होगी जो उस समय नावधिकरण के सुप्रीम कोर्ट द्वारा प्रयोग की जा रही थी। खंड 32 हाई कोर्ट्स को ऐसी दांडिक अधिकारिता प्रदत्त करता है जो नावधिकरण संबंधी न्यायालय के रूप में सुप्रीम कोर्ट द्वारा उस समय प्रयोग की थी। लेटर्स पेटेंट, 1862 के खंड 31 और खंड 32 द्वारा हाई कोर्ट्स में निहित अधिकारिता तारीख 28 सितम्बर, 1865 के लेटर्स पेटेंट के खंड 32 और खंड 33 द्वारा जारी रखी गई।

4.3. ब्रिटिश पालियामेंट ने 1890 का नावधिकरण विषयक उपनिवेशिक न्यायालय अधिनियम (53 और 54 विक्ट० सी० 2) (इसमें इसके पश्चात् 1890 का अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित किया। यह अधिनियम 1 जुलाई 1891 को "ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्रों" में प्रवृत किया गया था। अधिनियम की धारा 2 उपबंध करती है कि किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में प्रत्येक ऐसा विधि न्यायालय, जिसे अधिनियम के अनुसरण में तत्समय नावधिकरण संबंधी न्यायालय घोषित किया गया और यदि ऐसी घोषणा प्रवृत है और यदि कोई ऐसा न्यायालय है, जिसको असीमित सिविल अधिकारिता होगी। इसके अतिरिक्त यह उपबंध करता है कि ऐसा न्यायालय ऐसी सभी शक्तियों का प्रयोग करेगा जो वह अन्य सिविल अधिकारिता के प्रयोजन के लिए रखता है। धारा 2 का खंड 2 घोषित करता है कि नावधिकरण संबंधी न्यायालय की अधिकारिता वैसे ही स्थान, विषयों और चीजों पर होगी जैसे हाई कोर्ट की नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालय ऐसी अधिकारिता का पूर्ण विस्तार तक उसी रीति में प्रयोग कर सकेगा जिसमें इंगलैंड में हाई कोर्ट करता है। धारा 3 असीमित सिविल अधिकारिता, चाहे आरंभिक हो या अपीली के किसी न्यायालय को नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालय घोषित करने के लिए विधि अधिनियमित करने के लिए उपनिवेशिक विधान-मंडल को शक्ति प्रदत्त करती है। इस प्रकार की विधि अधिनियम के अधीन अधिकारिता के प्रयोग के लिए और ऐसी अधिकारिता के विस्तार को राज्य क्षेत्रीय रूप में या अन्यथा सीमित करने के लिए भी उपबंध कर सकेगी यह उपनिवेशिक विधान-मंडल को किसी अधीनस्थ या कनिष्ठ न्यायालय की ऐसी आंशिक या सीमित अधिकारिता प्रदान करने के लिए विधि अधिनियमित करने के बारे में शक्ति प्रदत्त करती है, जो वह ठीक समझे।

4.4. 1890 के अधिनियम की धारा 3 में अन्तर्विष्ट पूर्वोक्त उपबंधों के अनुसरण में भारतीय विधान-मंडल ने नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालय (भारत) अधिनियम, 1891 (1891 का 16) (इसमें इसके पश्चात् 1891 का अधिनियम कहा गया है) अधिनियमित किया जिसमें हाई कोर्ट्स आफ जुडिकेचर को जो "असीमित सिविल अधिकारिता" के न्यायालय हैं, और जो कलकत्ता, मद्रास और मुम्बई स्थित हैं। 1890 के अधिनियम के अधीन स्थापित नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालय घोषित किया गया। 1890 के अधिनियम की धारा 2(2) ने 1890 के अधिनियम के अधीन स्थापित नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालयों की अधिकारिता, हाई कोर्ट आफ इंग्लैंड की, जैसा कि वह अधिनियम के प्रवृत्त होने की तारीख को विद्यमान था, अधिकारिता सीमित कर दी। जैसा कि पहले उपदर्शित किया गया है, इंग्लैंड में नावधिकरण संबंधी उच्च न्यायालय की अधिकारिता को ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा पारित 1840 और 1861 के अधिनियमों द्वारा पर्याप्त रूप से विस्तारित कर दिया गया था। इंग्लैंड में नावधिकरण संबंधी उच्च न्यायालय की इस विस्तारित अधिकारिता को 1890 के अधिनियम द्वारा नावधिकरण उपनिवेशिक न्यायालयों को प्रदान कर दिया गया था।

4.5. उसके पश्चात् लटर्स पेटेंट के अधीन स्थापित कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास के चार्टर्ड हाई कोर्ट्स 1891 के अधिनियम के कारण की गई घोषणा को ध्यान में रखते हुए, नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करते रहे। उनकी शक्तियां और अधिकारिता भारत शासन अधिनियम, 1915 और भारत शासन अधिनियम, 1935[1] द्वारा उत्तरोत्तर आगे भी जारी रही। संविधान की प्रख्यापना पर पूर्वोक्त चार्टर्ड हाई कोर्ट्स संविधान की अनुच्छेद 372 में अन्तर्विष्ट व्यावृत्ति के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करते रहे क्योंकि संसद् द्वारा नावधिकरण विषयक अधिकारिता को न सीमित करने के लिए न उसका विस्तार करने के लिए कोई विधि या कानून अधिनियमित किया। संविधान के प्रख्यापन के पश्चात्, भारत में उच्च न्यायालय, संविधान के अधीन उच्चतर संविधानिक न्यायालय होने के कारण सिविल विषयों में असीमित अधिकारिता का प्रयोग करते रहे। नावधिकरण विषयक अधिकारिता के विस्तार के बारे में उच्च न्यायालयों ने नावधिकरण विषयक अधिकारिता से उत्पन्न मामलों में प्रक्रिया और व्यवहार को विनियमित करने के लिए नियम बनाए थे।

4.6. जैसा कि पहले संप्रेक्षण किया गया है कि नावधिकरण विषयक अधिकारिता के विस्तार से संबंधित प्रश्न संविधान के प्रख्यापन के पश्चात् कलकत्ता और मुम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष विचारार्थ आया। यद्यपि नावधिकरण विषयक अधिकारिता ब्रिटिश पार्लियामेंट द्वारा बनाई गई विधियों द्वारा इंग्लैंड में पर्याप्त रूप से विस्तारित की गई तथापि ये विधियां भारत में लागू नहीं की जा सकतीं अत: उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता वैसी ही बनी रही जैसी उन्हें 1891 के अधिनियम द्वारा प्रदत्त की गई थी। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने मद्रास में रजिस्टर किए गए एक पोत को जिसका स्वामी भारत में अधिवसित था कलकत्ता स्थित पत्तन में प्रदान की गई आवश्यक वस्तुओं के लिए एक दावे के वाद को इस आधार पर खारिज कर दिया क्योंकि पोत का स्वामी देश में अधिवसित हो गया था, अत: प्रदायकर्ता सामान्य सिविल न्यायालयों में विधि की सामान्य प्रक्रिया द्वारा अपने उपचार की मांग कर सकता था। कलकत्ता उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता के विस्तार पर विचार करते समय न्यायमूर्ति मुखर्जी ने अवधारित किया कि नावधिकरण संबंधी न्यायालय अधिनियम, 1861 को ध्यान में रखते हुए, कलकत्ता उच्च न्यायालय की अधिकारिता सीमित थी[2]। कलकत्ता उच्च न्यायालय ने मद्रास स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड बनाम शालीमार वर्क्स लिमिटेड[3] के एक मामले में पहले भी नावधिकरण संबंधी उपनिवेशिक न्यायालय अधिनियम, 1890 के खंड 2(3)(क) का निर्देश करते हुए निर्बंधित रीति में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का निर्वचन किया था।

4.7. मुम्बई उच्च न्यायालय[4] ने उस न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता के क्षेत्र, प्रकृति और विस्तार के बारे में खुले समुद्र में किए गए अपकृत्यों के विशेष प्रतिनिर्देश से विचार विमर्श किया था। न्यायालय ने इंगलैंड और भारत में नावधिकरण विषयक

विधि पर विस्तृत विचार करने के पश्चात् अभिनिर्धारित किया कि मुम्बई के न्यायालय को संविधान के प्रख्यापन के पश्चात् नावधिकरण विषयक वही अधिकारिता है जैसी उसे पहले थी, और जैसे इंग्लैंड में नावधिकरण विषयक अधिकारिता के उच्च न्यायालयों को कतिपय विषयों के बारे में अनन्य अधिकारिता थी। काशीबाई बनाम एस० एस० नेविगेशन[8] में पुनः न्यायमूर्ति शाह ने मुम्बई उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता के उद्गम और जारी रहने पर विचार किया। विद्वान न्यायाधीश ने अवधारित किया कि खुले समुद्र में टक्कर के परिणाम स्वरूप जीवन की हानि के बारे में सर्वबंधी नुकसानी के लिए कोई वाद उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अनन्य अधिकारिता के अन्तर्गत आता है।

4.8. कलकत्ता, मुम्बई और मद्रास उच्च न्यायालयों के दृष्टिकोण का बाद में इन्हीं उच्च न्यायालयों द्वारा और अन्य उच्च न्यायालयों द्वारा भी अनुसरण किया गया। निःसंदेह इन विनिश्चयों में चार्टर्ड हाई कोर्ट्स की नावधिकरण विषयक अधिकारिता की विद्य मानता और जारी रहना कतिपय विवाद के बारे में विवादाग्रस्त नहीं था किन्तु भारत में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के विस्तार के संबंध में पर्याप्त संदेह था। कलकत्ता और मुम्बई में अपनाया गया दृष्टिकोण बताता है कि भारत में उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता 1891 के इंगलिश अधिनियम के क्षेत्र से बाहर नहीं थी और यह कि पश्चातवर्ती ब्रिटिश कानूनों द्वारा इंग्लैंड में नावधिकरण संबंधी न्यायालयों की अधिकारिता के विस्तार भारतीय उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को वैसे ही विस्तारित नहीं करता। परिणामस्वरूप भारत में नावधिकरण विषयक अधिकारिता में कार्य करने वाला कोई उच्च न्यायालय देश में आने वाले स्थोरा के भिन्न, बाहर जाने वाले स्थोरा के बारे में वाद हेतुक के संबंध में सर्वबंधी अनुयोग में किसी विदेशी पोत को बन्दी या निरुद्ध करने का आदेश नहीं कर सकता।

4.9. उच्च न्यायालयों द्वारा किए गए निर्बंधित निर्वचन भारत में नावधिकरण विषयक अधिकारिता को सीमित करते हैं। भाग्यवश इस प्रश्न पर एम० वी० एलिजाबेथ बनाम हर्वन इन्वेस्टमेंट एंड ट्रेडिंग कंपनी[2] के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा विस्तार पूर्वक विचार किया गया। शीर्षस्थ न्यायालय ने विभिन्न अधिनियमों की विस्तार से समीक्षा की और उसके पश्चात् उसने भारतीय उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता को उचित ठहराया। उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक मामले में वादी ने, जिसका रजिस्ट्रीकृत कार्यालय गोवा में था, इस आधार पर प्रत्यर्थी के पोत और उसके स्वामी के विरुद्ध आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता का अवलंब लेकर सर्वबंधी अनुयोग के लिए एक वाद फाइल किया था कि प्रत्यर्थी ने पोत द्वारा भेजे गए माल के लिए वहन पत्र या अन्य दस्तावेज जारी किए बिना पत्तन छोड़ कर और इसके अलावा वादी के ऐसा न करने के निदेशों के होते हुए भी माल के उन्मोचन करने और उन्हें परेषिति को परिदत्त करने में "कर्तव्य भंग" का कार्य किया, क्योंकि मूल्य का संदाय नहीं किया गया था। प्रत्यर्थी ने इस आधार पर आरंभिक आक्षेप किया कि वादी का ऐसे विदेशी पोत के विरुद्ध वाद, जो किसी विदेशी कंपनी के स्वामित्वाधीन है और जिसका भारत में निवास या कारबार का स्थान नहीं है अपकृत्य में या भारत में किसी पत्तन से किसी विदेशी पत्तन को माल के वहन से उद्भूत दायित्व के किसी भंग के लिए उत्पन्न किसी वाद हेतुक के बारे में सर्वबंधी किसी अनुयोग द्वारा उच्च न्यायालय की नावधिकरण विषयक अधिकारिता में की कार्यवाही नहीं की जा सकती थी। उच्च न्यायालय ने आक्षेप को नामंजूर कर दिया और उच्चतम न्यायालय ने उच्च न्यायालय के विनिश्चय को अपील में उचित पाया। न्यायाधीश थोम्मन, जो नावधिकरण विषयक अधिकारिता के विस्तार पर विचार कर रहे हैं, ने इस प्रकार कहा :

"इसी प्रकार समुचित भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर सभी व्यक्तियों और चीजों के बारे में विचार करने के लिए समुद्री विधि के साधारण सिद्धान्तों और कानूनी विधि के लागू उपबंधों के अनुसार वे सक्षम हैं। न्यायालय की शक्तिपूर्ण और असीमित है जब तक इसे अभिव्यक्ततः या आवश्यक विवक्षा द्वारा कम नहीं कर दिया जाता है। अधिकारिता की ऐसी कमी के अभाव में वे सभी उपचार जो न्याय के

प्रशासन के लिए न्यायालयों को उपलब्ध है, दावेदार को विदेशी पोत के विरुद्ध को उपलब्ध है और उसका स्वामी संबंधित उच्च न्यायालय की अधिकारिता के भीतर पाया गया। न्याय प्रदान करने की न्यायालय की इस शक्ति के अंतर्गत अनिवार्यतः निर्णय के पूर्व गिरफ्तारी और कुर्की के अंतर्वर्ती आदेश करने की शक्ति भी होनी चाहिए।"[9]

1890 के नावधिकरण अधिनियम का निर्देश करने में विद्वान न्यायाधीश ने निम्नलिखित संप्रेक्षण किया :

"भारतीय उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता को इंग्लिश हाई कोर्ट के समीकृत करने में नावधिकरण विषयक उपनिवेशिक न्यायालय अधिनियम, 1890 इंग्लैंड में हाई कोर्ट की नावधिकरण विषयक अधिकारिता को अर्थपूर्ण से निर्दिष्ट करता है, चाहे वह किसी कानून के कारण या अन्यथा विद्यमान है। यह समर्थकारी कानून है न कि शक्ति को सीमित करने वाला कानून। यह अधिकारिता की अभिवृद्धि में सहायता करता है और इसमें बाधा नहीं डालता। इसका कोई कारण नहीं है कि क्यों "कानून या अन्यथा" शब्दों का इस प्रकार अर्थान्वियन किया जाना चाहिए जिससे उन विभिन्न स्रोतों का अपवर्जन किया जाए जिनसे इंग्लैंड में नावधिकरण विषयक अधिकारिता विकसित हुई। कानूनों के अलावा उक्त न्यायालय की शक्तियां, जैसा कि ऊपर देखा रूढ़ि और व्यवहार तथा कामन विधि और साम्या द्वारा विकसित सिद्धान्तों और साथ ही यूरोप में विकसित और व्यवहार में लाई गई सिविल विधि के सामान्य रूप से मान्यता प्राप्त सिद्धान्तों से व्युत्पन्न हुई थी। इसका कोई कारण नहीं है, बारडोट, (ऊपर) में मुम्बई उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति वेस्टरोप ने ठीक ही कहा था कि क्यों "कानून या अन्यथा" पद का इस प्रकार अर्थ लगाया जाए जिससे कि विधिक सिद्धान्तों के उन सभी विशाल क्षेत्रों को अपवर्जित किया जाए, जो इंग्लैंड की समुद्री विधि को समृद्ध और सशक्त बनाते हैं। इसी प्रकार कोई कारण नहीं है कि क्यों उन सिद्धान्तों को इस देश के विधिशास्त्र को समृद्ध और सशक्त करने के लिए पंक्तिबद्ध नहीं करना चाहिए, यहां तक कि यदि हमारे न्यायालयों की अधिकारिता को, इतिहास की बाध्यताओं द्वारा कम किया हुआ और उपनिवेशिक अतीत से संगत बना हुआ समझा जाता था जो एक ऐसी प्रतिपादना है, जो न तो सही है और न ही प्रभुसत्ता सम्पन्न गणतंत्र के रूप में हमारी प्रास्थिति संगत है।"[10]

भारत में उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता को इस आधार पर उचित मानने में कि वे वरिष्ठ न्यायालय होने के कारण और संविधान के अधीन सीमित अधिकारिता रखने के कारण, न्यायमूर्ति थोम्मन दि स्कूनर एक्सचेंज बनाम एम फैडम और अन्य, यू एस सुप्रीम कोर्ट रिपोर्ट क्रैन्च 5–9, पृष्ठ 114, 133 (3 एल०एड० 278), में यू एस सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चय पर प्रबल आक्रोश रखते हैं और संप्रेक्षण करते हैं कि : "नावधिकरण विषयक अधिकारिता न्यायिक प्रभुसत्ता का एक अत्यावश्यक पहलू है जो संविधान और विधि के अधीन अभिलेख के वरिष्ठ न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जाती है और वह अपनी अधिकारिता के भीतर व्यक्तियों और चीजों के संबंध में न्याय प्रशासित करता है। विदेशी पोतों के विरुद्ध दावे प्रवृत्त करने की शक्ति नावधिकरण विषयक अधिकारिता का अत्यावश्यक गुण है और यह ऐसे पोतों पर उस समय स्वीकार की जाती है जब वे उच्च न्यायालय की अधिकारिता के भीतर होते हैं और जब उन्हें बंदी और निरुद्ध करके रखा जाता है।"

4.10. उच्चतम न्यायालय के समक्ष एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया कि क्या आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय को जो चार्टर्ड उच्च न्यायालय नहीं है, नावधिकरण संबंधी विषयों में अधिकारिता प्राप्त थी। उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि क्योंकि आन्ध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, मद्रास उच्च न्यायालय का उत्तराधिकारी है, अतः उसे नावधिकरण विषयक अधिकारिता प्राप्त थी। किन्तु यह प्रश्न कि क्या भारत के अन्य उच्च न्यायालयों को भी, जो नान चार्टर्ड उच्च न्यायालय हैं नावधिकरण विषयक अधिकारिता है, अभिव्यक्त विनिश्चित नहीं

किया गया, यद्यपि उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए संप्रेक्षणों से यह काफी स्पष्ट हो गया कि उच्च न्यायालय संविधान द्वारा गठित अभिलेख का वरिष्ठ न्यायालय होने के कारण, कानूनी निबंधनों, यदि कोई हैं, के अधीन रहते हुए, असीमित सिविल और अपीली अधिकारिता रखता है । न्यायालय ने आगे व्यवस्था दी कि भारत में उच्च न्यायालयों को संविधान के प्रख्यापन के पश्चात् नावधिकरण विषयक अधिकारिता है, जो 1861 के अधिनियम के अधीन इंग्लैंड में उच्च न्यायालय की शक्ति के परिसीमन द्वारा अनावरोधित है । इस दृष्टिकोण में नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए सभी उच्च न्यायालयों को शक्ति प्रदत्त करने के लिए विधि को संहिताबद्ध करने की आवश्यकता है । अपनी अधिकारिता के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय व्यवहार और परिपाटी को ध्यान में रखते हुए ढंग, रीति और प्रक्रिया अधिकथित करनी होगी । प्रस्तावित विधान के ब्यौरों पर पश्चात्‌वर्ती अध्यायों में विचार किया जाएगा ।

पाद टिप्पण—अध्याय 4

1. धारा 220 और 223 ।
2. जयसवाल शिपिंग कंपनी बनाम एस० एस० लीलावती, ए आई आर 1954, कलकत्ता 415 ।
3. ए आई आर 1915, कलकत्ता 681 ।
4. कमलेकर महादेव भगत बनाम सिंधिया स्टीम नेविगेशन कंपनी लिमिटेड, ए आई आर 1961, मुम्बई 186 ।
5. ए आई आर 1961, मुम्बई 200 ।
6. सहीदा इस्माइल बनाम पैट्रो आर० सल्वेज कोव और अन्य, ए आई आर 1973, मुम्बई 18 और बंगाल सन्स प्राइवेट लिमिटेड और एक अन्य बनाम एम एस "एडिसन मैराइनर" और एक अन्य (1961–62) 66 सी डब्ल्यू एन 1083 ।
7. रीना पाढ़ी बनाम जगधीर, ए आई आर 1982, उड़ीसा 57 ।
8. जे टी 1992 (2) एस सी 65 ।
9. यथोक्त, पृष्ठ 94 ।
10. यथोक्त, पृष्ठ 95 ।

खंड 3

अध्याय 5

अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय

5.1. अन्तरराष्ट्रीय विधि के मामले में यह दावा किया जाता है कि अन्तर्राष्ट्रीय विधि को, उसे प्रवर्तित करने के पूर्व राष्ट्रीय विधि में परिवर्तित किया जाना चाहिए। यह केवल औपचारिक नहीं है बल्कि एक मूलभूत आवश्यकता है, जो केवल अन्तर्राष्ट्रीय संधियों और अभिसमय में अधिकथित नियमों को व्यक्तियों को विस्तारित करने को विधिमान्य करती है।

ऐसा सिद्धान्त राष्ट्रीय विधि की गैर सहमतिपरक प्रकृति के विपरीत अन्तर्राष्ट्रीय विधि के अनुमति सहमतिपरक स्वरूप पर आधारित है। विशिष्टतया, परिवर्तन सिद्धांत, उन संधियों, जो वचनों की प्रकृति की हैं, और देशीय कानून, जो समादेश की प्रकृति के हैं, के बीच अभिकथित अन्तर पर आधारित है। यह इस आधारभूत अन्तर से अनुसरित है कि एक किस्म से दूसरी में परिवर्तन औपचारिकतः सारभूत रूप में अपरिहार्य है।

5.2. नावधिकरण विषयक विधि दोनों, देशीय विधि और अन्तरराष्ट्रीय द्वारा शासित होती है। पोतों के रजिस्ट्रीकरण जैसे कुछ पहलू, संबंधित समुद्र समीपस्थ देश की देशीय विधियों द्वारा शासित होते हैं जबकि अन्य पहलू, विशेष रूप से वाणिज्यिक पहलू समुद्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विधि द्वारा शासित होते हैं। समुद्रीय अन्तर्राष्ट्रीय विधि का स्रोत या तो उस रुढ़िजन्य विधि में है जो समुद्र समीपस्थ राष्ट्रों द्वारा अनुसरित किए जाने वाले साधारण व्यवहार पर आधारित है, या उस संधि में है, जो मुख्यतः अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शनों पर आधारित है। रुढ़िजन्य समुद्रीय विधि का अनेक सदियों में विकास हुआ है और भिन्न-भिन्न सभ्यताओं में किन्तु अभी हाल ही के दौरान, इसका सारवान भाग अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयों में संहिताबद्ध किया जा चुका है। भिन्न-भिन्न अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शनों के अन्तर्गत समुद्रीय विधि के भिन्न-भिन्न पहलू आते हैं। इस विधि के विकास का संक्षिप्त अध्ययन लाभकारी होगा।

5.3. द्वितीय विश्व युद्ध पूर्व अवधि में पोत परिवहन के संबंध में सभी समस्याओं को, जिनके लिए अन्तर्राष्ट्रीय करार अपेक्षित थे, तदर्थ सम्मेलनों में निपटाया गया। पश्चात्वर्ती में पोत परिवहन के जो अपने कार्यचालन में मुख्य रूप से अन्तर्राष्ट्रीय उद्योग है, विभिन्न पहलुओं को विनियमित करने के लिए कन्वेंशन विरचित किए गए।

एक स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रीय आयोग की स्थापना की परिकल्पना वाशिंगटन में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रीय सम्मेलन में 1889 के आरंभ में की गई थी, जिसमें "समुद्र में जीवन और संपत्ति की सुरक्षा" के प्रश्नों पर अनन्यतः विचार किया गया। किन्तु सम्मेलन इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि "वर्तमान में किसी स्थायी अन्तर्राष्ट्रीय समुद्रीय आयोग की स्थापना समीचीन नहीं समझी गई।"

5.4. किन्तु पोत परिवहन से संबंधित प्रथम अन्तर सरकारी संगठन 1944 में स्थापित किया गया। इस संगठन का नाम संयुक्त समुद्रीय प्राधिकरण था और इसका मुख्य कार्य सेनाओं की बर्खास्तगी, सिविल आवश्यकता, राहत और पुनर्वास कार्यक्रमों, आदि की अपेक्षाओं के लिए आवश्यक पोत परिवहन के बारे में व्यवस्था करना था। 1946 में, संयुक्त समुद्रीय प्राधिकरण को एक अन्य संगठन, संयुक्त समुद्रीय परामर्शदात्री परिषद् द्वारा प्रतिस्थापित किया गया इस परिषद् ने, दो सत्र, एक जून 1946 में एमर्सडम में और दूसरा अक्तूबर, 1946 में वाशिंगटन में किया था। संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक परिषद् के संकल्प के अनुसरण में संयुक्त समुद्रीय परामर्शदात्री परिषद् के इन सत्रों में एक स्थायी अन्तर-सरकारी

समुद्रीय संगठन की स्थापना के लिए एक प्रारूप अभिसमय तैयार किया गया। अंततः संयुक्त राष्ट्र की आर्थिक और सामाजिक परिषद् के अनुरोध पर एक स्थायी सरकारी पोत परिवहन संगठन की वांछनीयता पर विचार करने और उसके कार्यक्षेत्र और कृत्यों को अधिकथित करने के लिए फरवरी-मार्च, 1948 में जनेवा में संपूर्ण संसार के आधार पर सरकारों के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन बुलाया गया। विचार-विमर्श का आधार संयुक्त समुद्रीय परामर्शदात्री परिषद् द्वारा पहले से तैयार किया गया प्रारूप अभिसमय था। जनेवा सम्मेलन ने अन्तर सरकारी समुद्रीय परामर्शदात्री संगठन (अ०स०प०सं०) के बारे में एक अभिसमय सफलतापूर्वक तैयार किया और हस्ताक्षर के लिए खोला, जो बाइस राष्ट्रों के (इसके अन्तर्गत सात ऐसे थे जिनका पोत परिवहन कम से कम दस लाख सकल टन था) इसके पक्षकार बनने के पश्चात् ही प्रवृत्त हो सका। 17 मार्च, 1958 को जपान इस अभिसमय को स्वीकार करने वाला बाईसवां राष्ट्र था। जो संगठन इस प्रकार अस्तित्व में आया वह संयुक्त राष्ट्र का बारहवां विशेषज्ञता प्राप्त अभिकरण था। इसके सदस्यों के अंतर्गत केवल पारस्परिक समुद्र समीपस्थ देश ही नहीं थे बल्कि वे सभी थे, जो अन्य देशों को पोत परिवहन सेवाओं पर मुख्यतः निर्भर करते हैं। समुद्री कार्य से संबद्ध यह पहला अंतर-सरकारी संगठन था, क्योंकि इसका मुख्य प्रयोजन अन्तरराष्ट्रीय वाणिज्य पोत परिवहन है। जो एक महत्वपूर्ण कार्यक्षेत्र है और अत्यधिक यात्री तथा माल का अधिकतर टनभार अभी भी परिवहन के अन्य साधनों की बजाय पोतों में ले जाया जाता है।

5.5. अ०स०प०सं० का पहला उद्देश्य पोत परिवहन को प्रभावित करने वाले सभी तकनीकी विषयों में सरकारों के बीच सहयोग सुकर बनाना है। इसका उद्देश्य समुद्री सुरक्षा और दक्ष नौचालन के उच्चतर व्यवहार्य मानकों को प्राप्त करना है। इसका समुद्र में जीवन की सुरक्षा के लिए विशेष उत्तरदायित्व है। यह सभी समुद्री तकनीकी विषयों पर राष्ट्रों के बीच जानकारी के आदान प्रदान के लिए व्यवस्था करता है।

5.6. अ०स०प०सं० का एक अन्य कार्य अन्तरराष्ट्रीय व्यापार में पोतों को प्रभावित करने वाले भेदभावपूर्ण, अनुचित और निर्बंधित व्यवहारों को निरुत्साहित करना है जिससे कि विदेश परिवहन के लिए संसार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पोत परिवहन सेवाओं की अधिकतम संभव उपलब्धता की अभिवृद्धि की जा सके। अ०स०प०सं० से पोत परिवहन के मामलों में अन्य अन्तरराष्ट्रीय निकायों को, जिनके अन्तर्गत संयुक्त राष्ट्र के अभिकरण भी हैं, सलाह देने और उन्हीं संयुक्त राष्ट्र अभिकरणों के साथ, जो श्रम संबंधी प्रश्नों दूरसंचार, मौसम विज्ञान, विमानन, परमाणु ऊर्जा और स्वास्थ्य से संबंधित हैं, अपने क्रियाकलापों को समन्वित करने की भी अपेक्षा है। संगठन के अन्य उत्तरदायित्वों के अंतर्गत तेल से समुद्र के प्रदूषण को रोकने के विषय में, तथा पोतों के टनभार मापमानों के लिए विनियमों का एकीकरण है।

5.7. वर्तमान रिपोर्ट में अनेक अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों के निर्देश मात्र के अतिरिक्त कोई और बात करना संभव नहीं।

5.8. **मुख्य अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय**—शांति के दौरान वाणिज्य पोत परिवहन को शासित करने वाले मुख्य अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों का "ब्रिटिश शिपिंग लाज" के खंड 8 में निम्नलिखित पांच प्रमुख अनुभागों के अधीन प्रसंशनीय वर्णन किया है:

(क) तकनीकी और परिचालन अभिसमय।

(ख) मल्लाहों का नियोजन, कल्याण और प्रास्थिति।

(ग) प्राइवेट समुद्री विधि का एकीकरण।

(घ) समुद्र विधि, भूमि से घिरे हुए राष्ट्र, पत्तन, नहरें और जलडमरूमध्य।

(ङ) वाणिज्य पोत परिवहन से संबद्ध अन्तरराष्ट्रीय संगठन।

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वाणिज्य पोत परिवहन के संदर्भ में आज संधि विधि, अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के विनियमन में बहुत महत्वपूर्ण हो गई है। आज वाणिज्य पोत परिवहन

उन द्विपक्षीय करारों, बहुपक्षीय संधियों और अन्तरराष्ट्रीय अभिसमयों द्वारा अधिकतर विनियमित होता है, जो किसी पोत के स्वामी राष्ट्र की राष्ट्रीय संहिता में नहीं पाए जा सकते जो स्वयं भी देशीय ऐसे विधानों से संबद्ध होती हैं, जिसके अन्तर्गत वे अन्तरराष्ट्रीय विधेयक भी हैं। जिनकी पुष्टि देशीय अधिनियमित करती है।

5.9. **तकनीकी और परिचालन अभिसमय**—तकनीकी और परिचालन अभिसमय निम्नलिखित से संबंधित है:

(क) नौचालन;

(ख) सुरक्षा अभिसमय;

(ग) जल के भीतर केबल और दूरसंचार;

(घ) पोतों के टनभार का मापमान; और

(ङ) स्वच्छता अभिसमय।

नौचालन से संबंधित अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय जिनके अन्तर्गत समुद्रीय संकेतों से संबंधित करार और मानवयुक्त प्रकाश पोत, जो अपने स्टेशनों पर नहीं हैं, तथा विधि के अन्य विषय हैं, किन्तु अन्तरराष्ट्रीय सुरक्षा अभिसमयों पर पूरा ध्यान देने की आवश्यकता है।

5.10. **दूर संचार अभिसमय**—अन्तरराष्ट्रीय दूर संचार, जिसे 1952 में ब्यूनस आईरिस के पूर्णाधिकार सम्मेलन में अंगीकार किया गया था, 1 जनवरी, 1954 को प्रवृत्त हुआ। इसमें कोई मुख्य ढांचागत परिवर्तन नहीं किए गए। न ही 1959 के जनेवा अभिसमय ने, जो 1 जनवरी, 1961 को प्रवृत्त हुआ था, संघ के ढांचे में या मुख्यालय के कार्यकरण में कोई बड़ा परिवर्तन किया।

किन्तु 1959 का जनेवा अभिसमय इस विषय पर अंतिम विधान का प्रतिनिधित्व करता है और रेडियो रेग्युलेशंस, जनेवा, 1959 उन सभी पूर्ववर्ती विनियमों का अतिक्रमण करते हैं, अतः निम्नलिखित अभिसमयों के पाठों के अन्तर्गत सम्पूर्ण कार्यक्षेत्र आता है:

(1) अन्तरराष्ट्रीय दूर संचार अभिसमय, जनेवा, 1959, अभिसमय के अंतिम प्रोतोकाल सहित;

(2) रेडियो रेग्युलेशन, जनेवा, 1959;

(3) एडिशनल रेडियो रेग्युलेशन, 1959;

(4) अन्तरराष्ट्रीय तार और टेलीफोन विनियम, जनेवा, 1958।

पूर्ववर्ती अन्तरराष्ट्रीय दूर संचार अभिसमय जैसे कि ब्यूनस आईरस (1952) या एटलांटिक सिटी (1947) तथा रेडियो रेग्युलेशन्स, एटलांटिक सिटी (1947), अब प्रवृत्त नहीं हैं, जो 1959 के जनेवा अभिसमय और विनियम द्वारा अधिक्रांत हो चुके हैं।

5.11. **स्वच्छता अभिसमय**—संसार के यातायात को न्यूनतम प्रभावित करते हुए, रोग के अन्तरराष्ट्रीय फैलाव के विरुद्ध अधिकतम सुरक्षा सुनिश्चित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय स्वच्छता विनियम, जनेवा, 1951, वर्ल्ड हेल्थ असैम्बली ने उसी वर्ष अंगीकृत किए थे और ये विनियम रोगध्वज उपबंधों, तीर्थ यात्री यातायात आदि के स्वच्छतापूर्ण नियंत्रण के संबंध में पश्चात्वर्ती वर्ल्ड हेल्थ असैम्बलियों द्वारा संशोधित किए गए थे। जहां तक पोत परिवहन का संबंध है, 1951 के स्वच्छता विनियम, जैसे यह पहले थे, इस विषय पर संहिताबद्ध विधि का प्रतिनिधित्व करते हैं जो उस प्रक्रिया का जो 1892 में आरंभ हुई थी, उत्कृष्ट विकास है।

5.12. **मल्लाहों का नियोजन, कल्याण और प्रास्थिति**—सामाजिक न्याय की स्थापना करके अन्तरराष्ट्रीय शांति को अग्रसर करने के एक मात्र उद्देश्य से 1919 की शांति संधि द्वारा स्थापित अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठन बहुत थोड़े अंतरराष्ट्रीय संगठनों में से एक है जो

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् भी बना रहा संयुक्त राष्ट्र के साथ इस संगठन के संबंध स्थापित करने वाला करार और संयुक्त राष्ट्र के एक विशेषज्ञीय अभिकरण के रूप में इसकी प्रास्थिति परिभाषित करना 14 दिसम्बर, 1946 को संयुक्त राष्ट्र की महा सभा द्वारा उसके अनुमोदन पर प्रवृत्त हुआ । समुद्रीय अभिसमयों और अन्तरराष्ट्रीय श्रम संगठनों की सिफारिशों को निम्नलिखित विस्तृत प्रवर्गों में सम्मिलित किया गया है :

1. मल्लाहों का नियोजन—
   (क) नियोजन की प्रविष्टि ;
   (ख) नियोजन की शर्तें ;
2. अर्हताओं के प्रमाणपत्र ;
3. मजदूरी काम के घंटे और काम में लगाना ;
4. सामाजिक सुरक्षा ;
5. पोतों के फलक पर और पत्तनों पर मल्लाहों का कल्याण ;
6. प्रकीर्ण ।

5.13. **प्राइवेट समुद्रीय विधि का एकीकरण**—मेजबान देश के रूप में बेल्जियम सरकार ने समुद्रीय विधि पर राजनयिक सम्मेलन के अनेक सत्र आयोजित किए और इन सम्मेलनों से विभिन्न अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय पैदा हुए, जिनके अन्तर्गत टक्कर समुद्र में उद्धारण, समुद्रगामी जलयानों के स्वामियों के दायित्व का परिसीमन, बिना किराया दिए यात्रा करके अपने को पोत में छिपाना, समुद्रीमार्ग से माल और यात्रियों का वहन, न्यूक्लीय पोतों के प्रचालकों का दायित्व और समुद्रीय धारणाधिकार और बंधक हैं ।

1932 के आक्सफोर्ड सम्मेलन का एक संक्षिप्त निर्देश किया जा सकता है, जिसमें "वार्शा आक्सफोर्ड नियम" के नाम से ज्ञात नियम अंगीकार किए गए थे और ये नियम, उनको प्रस्थापना करने के लिए आशयित थे, जो विनिर्दिष्ट निबंधनों पर माल का क्रय और विक्रय करना चाहते थे किन्तु संविदा का कोई मानक प्ररूप या उपलब्ध सामान्य स्थितियां या उनका विनिर्दिष्ट संविदाओं में अंगीकार करने के लिए एक समान नियमों का कोई सेट स्वैच्छिक और सुगम साधन नहीं हैं ।

5.14. **समुद्रीय विधि**—1958 तक, जब समुद्रीय विधि के संबंध में जनेवा अभिसमयों पर हस्ताक्षर किए गए थे, अन्तरराष्ट्रीय संबंधों के इस महत्वपूर्ण क्षेत्र को विनियमित करने के लिए अन्तरराष्ट्रीय विधि के रुढ़िजन्य सिद्धान्तों पर छोड दिया था । वास्तव में, जनेवा अभिसमयों के आधार पेश करने में समुद्रीय रुढ़िजन्य विधि का प्रभाव खुले समुद्रों के अभिसमय की प्रस्तावना में स्वीकार किया गया है, जो कथित करती है कि अभिसमय में सम्मिलित किए गए उपबंध साधारणतया अन्तरराष्ट्रीय विधि के सुस्थापित सिद्धान्तों के कथन मात्र हैं । किन्तु यह अब भी कहा जा सकता है कि कुछ मामलों में राज्य क्षेत्रीय समुद्रीय विधि के संहिताबद्ध करने का कार्य अभी भी पूरा नहीं हुआ है । पोतों से तेल के रिसाव द्वारा समुद्र के प्रदूषण को रोकने के लिए एक अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय 1954 में लंदन में प्रारूपित किया गया था और तब से समुद्र समीपस्थ राष्ट्रों को उसे अधिक स्वीकार्य बनाने के लिए इसे संशोधित किया गया है । कुछ राष्ट्रों ने इस अभिसमय को देशीय विधान द्वारा कार्यान्वित किया है ।

5.15. **समुद्रीय विधि का संयुक्त राष्ट्र अभिसमय,** 1982—10 दिसम्बर, 1982 को समुद्रीय विधि संबंधी संयुक्त राष्ट्र अभिसमय को उसे हस्ताक्षर के लिए खोलने के पहले ही दिन 117 देशों और दो अन्य सत्ताओं (दि कुक आइलैंड्स और नाम्बीबिया के बारे में संयुक्त राष्ट्र परिषद्) द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे । यह चौदह वर्षों से अधिक के कार्य को शिखरस्थ करता है, जिसमें 150 देशों से अधिक ने भाग लिया और जो पृथ्वी के सभी क्षेत्रों, सभी विधिक और राजनैतिक प्रणालियों, सामाजिक आर्थिक विकास की सभी स्थितियों, खनिजों

की उन सभी किस्मों के बारे में, जो समुद्रतल में पाए जा सकते हैं, विभिन्न प्रवृत्तियों वाले देशों, तटीय राष्ट्रों, उन राष्ट्रों का जो महासागर स्थान के संबंध में भौगोलिक रूप से अलाभकर रूप में वर्णित है, द्वीप समूह राष्ट्रों, द्वीप और भूमि से घेरे हुए राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करते हैं ।

अभिसमय को, चार संबंधित संकल्पों सहित 30 अप्रैल, 1982 को अंगीकार किया गया था । केवल चार राष्ट्रों, अर्थात् इजराइल, टर्की, यू० एस०ए० और वेन्जूएला ने अभिसमय के विरुद्ध मत दिया । 10 दिसम्बर, 1982 को अभिसमय को मोंटेगो बे, जामाइका में एक औपचारिक समारोह में हस्ताक्षरित किया गया । वह 10 दिसम्बर, 1983 को प्रवर्तित हुआ । अभिसमय पर 117 देशों और दो अन्य सत्ताओं ने पहले ही दिन हस्ताक्षर कर दिए अन्त में जपान ने भी अभिसमय पर हस्ताक्षर कर दिए । विकासशील और समाजवादी देशों के अलावा, आस्ट्रेलिया, कनाडा, डेनमार्क, फ्रांस, फिनलैंड, आयरलैंड, दि नीदरलैंड, नार्वे और न्यूजीलैंड, जिन्होंने अभी तक हस्ताक्षर कर दिए हैं तथा अन्य देश हैं फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी, इटली, स्पेन, स्विटजरलैंड, यूनाइटेड किंगडम और यू०एस०ए० । अभिसमय का विस्तार महासागर स्थान को शासित करने वाले "न्यायसंगत और साम्यापूर्ण अन्तरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था" की प्राप्ति के प्रयास में सार्वभौमिकता स्थापित करता है । अभिसमय बहुमुखी है और संधि करने की प्रक्रिया में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग के लिए एक स्मारक के रूप में प्रस्तुत करता है । समुद्रीय नई विधि में परिसीमनों से लेकर पर्यावरण नियंत्रण, प्रौद्योगिकी और महासागर के विषयों से संबंधित विवादों के निपटारे तक महासागर के सभी पहलु आते हैं । अभिसमय का उद्देश्य रुढ़िजन्य मानकों को ही संहिताबद्ध करना नहीं है बल्कि अन्तरराष्ट्रीय विधि का प्रगामी विकास है ।

5.16. अभिसमय ने स्वयं ही सभी महासागर संबंधी ढांचा विषयों के विनियमन के लिए एक विस्तृत ढांचा स्थापित किया है । अभिसमय में 320 अनुच्छेद और 9 उपाबंध हैं इसे सत्रह भागों में विभाजित किया गया है और पहला भाग राष्ट्रीय अधिकारिता के क्षेत्रों के प्रश्न के संबंध में है । शेष अभिसमय में महासागर से संबद्ध विषयों के विभिन्न पहलुओं को शासित करने वाले उपबंध हैं, जिसके अन्तर्गत समुद्र तक पहुंच, नौचालन, संरक्षण और समुद्री पर्यावरण का परिरक्षण, जीवित संसाधनों का शोषण और उनका संरक्षण, वैज्ञानिक अनुसंधान, समुद्र-तल खनन और गैर-जीवित संसाधनों का अन्य शोषण और विवादों का निपटारा है । इसके अतिरिक्त अभिसमय नए अन्तरराष्ट्रीय मानक स्थापित करता है, जो संक्षेप में निम्नलिखित हैं :

(1) तटीय राष्ट्रों की चौड़ाई में बारह मील तक उनके राज्यक्षेत्रीय समुद्र पर प्रभुसत्ता होगी किन्तु विदेशी जलयानों को शांतिपूर्वक नौचालन के प्रयोजनों के लिए उन समुद्रों में से सीधी समुद्री यात्रा अनुज्ञात की जाएगी ।

(2) सभी देशों के पोतों और वायुयानों को तब तक अन्तरराष्ट्रीय नौचालन के लिए प्रयोग किए जाने वाले जलडमरुओं के माध्यम से "अभिवहन समुद्री यात्रा" अनुज्ञात की जाएगी जब तक वे विलम्ब किए बिना और सीमावर्ती राष्ट्रों को भयभीत किए बिना यात्रा के अन्य पहलुओं को विनियमित करने के लिए समर्थ होंगे ।

(3) तटीय राष्ट्र की प्राकृतिक संसाधनों और कतिपय आर्थिक क्रियाकलापों के बारे में 200 मील के अनन्य आर्थिक क्षेत्र में प्रभुसत्ता सम्पन्न अधिकार होंगे, और समुद्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान और पर्यावरण पर कुछ किस्म की अधिकारिता भी होगी, सभी अन्य राष्ट्रों को नौचालन और उस क्षेत्र में ऊपर उड़ान करने तथा समुद्र के जल में केबल और पाइपलाइन डालने की स्वतंत्रता है, भूमि से घिरे हुए और भौगोलिक रूप से अलाभकर राष्ट्रों को उस क्षेत्र के मछली उद्योग के आगत: दोहन में भाग लेने का अवसर मिलेगा जबकि तटीय राष्ट्र स्वयं ही सभी का संग्रहण नहीं कर सकेंगे । मछलियों और समुद्रीय स्तनपायियों की अत्यधिक प्रवासी किस्मों को विशेष संरक्षण दिया जाएगा ।

(4) उन द्वीप समूह राष्ट्रों को, जो निकट का संबंध रखने वाले समूह या समूहों और परस्पर संबंधित समुद्रों से बने हैं, उस समुद्र क्षेत्र पर प्रभुसत्ता प्राप्त होगी, जो उन द्वीपों के सब से बाहरी बिन्दुओं के बीच खींची गई सीधी रेखा से घिरा हुआ है। सभी अन्य राष्ट्रों को द्वीप समूह राष्ट्रों द्वारा निर्दिष्ट लेनों के माध्यम से समुद्री यात्रा का अधिकार प्राप्त होगा।

(5) सभी राष्ट्रों को पारम्परिक स्वतंत्र नौचालन, ऊपर उड़ान करने, वैज्ञानिक अनुसंधान और खुले समुद्र में मछली पकड़ने का अधिकार प्राप्त होगा, वे जीवित संसाधनों के प्रबंध और संरक्षण के लिए अपनाए जाने वाले उपायों में अन्य राष्ट्रों को सहयोग देने के लिए बाध्य होंगे।

(6) राज्यक्षेत्रीय समुद्र, अनन्य आर्थिक क्षेत्र और द्वीपों के कांटिनेन्टल शेल्फ का अवधारण भू-राज्यक्षेत्र को लागू नियमों के अनुसार किया जाएगा किन्तु उन चट्टानों का जो मानव निवास या आर्थिक जीवन बनाए नहीं रख सकतीं, कोई आर्थिक क्षेत्र या कांटिनेन्टल शेल्फ नहीं होगा।

(7) तटीय राष्ट्रों को कांटिनेन्टल शेल्फ (समुद्र तक का राष्ट्रीय क्षेत्र) पर तट से 350 मील तक या विनिर्दिष्ट परिस्थितियों में उससे भी अधिक तक उसकी खोज करने के प्रयोग के लिए प्रभुसत्ता सम्पन्न अधिकार होंगे, तटीय राष्ट्र उस राजस्व का हिस्सा अन्तरराष्ट्रीय समुदाय में बांटेंगे, जो वे 200 मील से परे अपने शेल्फ के किसी भाग से तेल या अन्य संसाधन का विदयोहन करेंगे, और कांटिनेन्टल शेल्फ सीमा संबंधी आयोग, शेल्फ की अन्य सीमाओं के संबंध में सिफारिशें करेगा।

(8) एक समानान्तर पद्धति अन्तरराष्ट्रीय समुद्र तल क्षेत्र की खोज और उसके विदयोहन के लिए स्थापित की जाएगी; क्षेत्र में सभी क्रियाकलाप अभिसमय के अधीन स्थापित किए जाने वाले अन्तरराष्ट्रीय समुद्र-तल प्राधिकरण के नियंत्रण के अधीन होंगे।

(9) भूमि से घेरे हुए राष्ट्रों को, समुद्र को और उससे पहुंचमार्ग का अधिकार होगा और उन्हें अभिवहन के राष्ट्रों के राज्यक्षेत्र के माध्यम से अभिवहन की स्वतंत्रता प्राप्त होगी।

(10) घिरे हुए या आधे घिरे हुए समुद्र की सीमा वाले राष्ट्रों से जीवित संसाधनों के प्रबंध और पर्यावरण और अनुसंधान तथा नीतियों और क्रियाकलापों के बारे में सहयोग करने की आशा की जाएगी।

(11) आर्थिक क्षेत्र में और कांटिनेन्टल शेल्फ के बारे में सभी समुद्रीय वैज्ञानिक अनुसंधान अनन्य तटीय राष्ट्रों की सहमति के अधीन होंगे किन्तु तटीय राष्ट्र अधिकतर मामलों में शांतिपूर्ण प्रयोजनों के लिए अनुसंधान करने के लिए विदेशी राष्ट्रों को सहमति प्रदान करने के लिए बाध्य होंगे।

(12) राष्ट्र किसी भी स्रोत से समुद्रीय प्रदूषण को रोकने और नियंत्रित करने के लिए आबद्धकर होंगे तथा समुद्रीय प्रदूषण को रोकने के अपने अन्तरराष्ट्रीय दायित्व के भंग से कारित नुकसान के लिए दायी होंगे।

(13) राष्ट्र अपने विवादों को अभिसमय के अधीन स्थापित किए जाने वाले समुद्रीय विधि विषयक अन्तरराष्ट्रीय अधिकरण को, अन्तरराष्ट्रीय न्यायालय को या माध्यस्थम् को निर्देश द्वारा शांतिपूर्ण साधनों द्वारा निपटाने के लिए बाध्य होंगे। सुलह की रीति भी उपलब्ध है और कतिपय परिस्थितियों में उसके सक्षम इसे पेश करना अनिवार्य है।

(14) राष्ट्र सभी न्यायसंगत हितों का, जिनके अंतर्गत प्रौद्योगिकी के धारकों, प्रदायकर्ताओं और प्राप्तिकर्ताओं के अधिकार और कर्तव्य भी हैं, उचित ध्यान रखते हुए, "उचित और युक्तियुक्त निबंधनों और शर्तों पर" समुद्रीय प्रौद्योगिकी के विकास और अन्तरण की अभिवृद्धि के लिए आबद्धकर होंगे।

(15) दूसरों के अधिकारों का सम्मान करना सभी राष्ट्र पक्षकारों का सर्वोपरि कर्तव्य है; किन्तु कुछ कर्तव्यों के साथ अधिक निष्पादक कार्य जुड़े हो सकते हैं। संकटों की सूचना देने का कर्तव्य, कर्तव्य की पश्चात्‌वर्ती किस्म का उदाहरण होगा अधिकार और कर्तव्यों के संतुलन की सर्वव्यापी उपधारणा को अभिसमय के अनुच्छेद 300 द्वारा महत्व दिया गया है।

(16) अभिसमय "समुद्र-तल प्राधिकरण" को शासित करने वाले सिद्धांतों और विनियमों को भी अवधारित करता है।

5.17. समुद्रीय विधि विषयक अभिसमय पर हस्ताक्षर करने के साथ ही एक आरंभिक तैयारी करने वाले आयोग की स्थापना की गई थी, जिसकी स्थापना अभिसमय के अधीन स्थापित की जाने वाली दो मुख्य संस्थाओं के लिए मार्ग प्रशस्त करेगी और ये संस्थाएं, अर्थात् समुद्र-तट प्राधिकरण जिसका मुख्यालय जमाइका में और समुद्रीय विधि विषय अन्तरराष्ट्रीय अधिकरण, जो हम्बर्ग, फेडरल रिपब्लिक आफ जर्मनी में अवस्थित होगी। ये विषय अब भी अध्ययनाधीन हैं।

5.18. यह सर्व विदित है कि अभिसमय के होते हुए भी समुद्र जल के प्रदूषण के कुप्रभाव बढ़ रहे हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अभिसमय से अन्तरराष्ट्रीय विधि के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात होता है। यह समस्याओं के हल की खोज में एक अर्थपूर्ण सफल प्रयास है। किन्तु तकनीकी तौर पर, अभिसमय उस समुद्रीय नई विधि को प्रतिबिम्बित नहीं करता है, जो सभी राष्ट्रों पर आबद्धकर हो। इसके अतिरिक्त, यह भी संदेहास्पद है कि समुद्र-तल अन्तरराष्ट्रीय प्राधिकरण, तकनीकी रूप से उन्नत राष्ट्रों के सहयोग के बिना प्रभावी ढंग से कार्य करने में कितना समर्थ होगा। अभिसमय के समर्थन में संधियों को शासित करने वाली विधि द्वारा विभिन्न दलीलें और निर्वचन प्रस्तुत किए गए हैं।[3] किन्तु अतिरिक्त शक्तियों के बिना अभिसमय अवश्यम्भावी कमजोर होता जाएगा। इसके अलावा, अभिसमय इसका उत्तर देने में भी असफल रहा है कि तटीय राष्ट्रों की विधियां उसके पार्श्वस्थ क्षेत्र के भीतर क्यों प्रत्यक्षतः प्रवृत्त नहीं की जा सकतीं, यद्यपि तटीय राष्ट्र अपने तटों के पार्श्वस्थ संसाधनों के युक्तिसंगत विदोहन को विनियमित करने के लिए बेहतर स्थिति में हैं। वास्तव में अनन्य आर्थिक क्षेत्र तटीय राष्ट्रों की राष्ट्रीय अधिकारिता के भीतर आता है, जो "नावधिकरण अधिकारिता" की पारम्परिक उपधारणा को भी प्रभावित करेगा।

पाद टिप्पण—अध्याय 5

1. सतीश चन्द्र, दि यू एन० क्रोनोलाजी आफ दि "ला आफ दि सी", सिविल एण्ड मिलिटरी जरनल, खंड 20 (3-4) 1984 पृ० 159।

2. सतीश चन्द्र; "सम आस्पेक्ट्स आफ दि न्यू कान्स्टिट्यूशन फार दि ओसन", एकेडमी ला रिव्यू, खंड 7 (1983) पृ० 194।

3. सतीश चन्द्र; "ला आफ दि सी", 1985।

अध्याय 6

अन्तरराष्ट्रीय अभिसमय और भारत की प्रास्थिति

6.1. भारत अनेक समुद्रीय अभिसमयों और नयाचारों का हस्ताक्षरकर्ता रहा है। यह नोट करना अतिरोचक है कि अब तक कुल 22 समुद्रीय अभिसमय और 15 नयाचार तैयार किए गए हैं। इन 37 अंतरराष्ट्रीय समुद्रीय संगठन लिखतों में से, 19 अभिसमय और 7 नयाचार इस समय प्रवृत्त हैं। भारत में 12 अभिसमयों और 5 नयाचारों का अनुसमर्थन किया है। 6 अभिसमयों और 1 नयाचार का अनुसमर्थन, भारत सरकार के विचाराधीन है। भारत ने 13 अभिसमयों/नयाचारों का अनुसमर्थन इस आधार पर नहीं किया है कि या तो वे अंतरराष्ट्रीय रूप से प्रवर्तन में नहीं हैं या कुछ अन्य मौलिक कारण हैं। अभिसमयों और नयाचारों की सूची और भारत में उनकी प्रास्थिति निम्नवत् है :—

6.2. **भारत द्वारा पहले ही अनुसमर्थित अभिसमय**—निम्नलिखित अंतरराष्ट्रीय समुद्रीय संगठन अभिसमय भारत द्वारा पहले ही अनुसमर्थित कर दिए गए हैं :

(1) समुद्र में जीवन की सुरक्षा के लिए अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1974 (सोलास, 1974) ;

(2) सोलास से संबंधित 1978 का नयाचार, 1974 ;

(3) समुद्र में टक्कर के निवारणार्थ अंतरराष्ट्रीय विनियमों का अभिसमय, 1972, यथासंशोधित (कोलरेग, 1972) ;

(4) अंतरराष्ट्रीय यातायात के सरलीकरण का अभिसमय, 1965 (फेल–1965) ;

(5) लोडलाइन संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1966 ;

(6) पोतों के टनभार मापन संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1969 ;

(7) विशेष व्यापार यात्री पोत करार, 1971 ;

(8) विशेष व्यापार यात्री पोतों के लिए स्थान अपेक्षा संबंधी नयाचार, 1973 ;

(9) सुरक्षित आधान संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1972 ;

(10) अंतरराष्ट्रीय समुद्रीय सेटेलाइट संगठन संबंधी अभिसमय, (इन्मार्सेट) ;

(11) इन्मार्सेट संबंधी प्रचालन करार ;

(12) प्रशिक्षण प्रमाणीकरण और निगरानी मानक संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1978 (एस टी सी डब्ल्यू) ;

(13) मारपोल, 1973/1978 (एस टी सी डब्ल्यू) ;

(14) तेल प्रदूषण नुकसान के लिए सिविल दायित्व संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1969 (सी एल सी 1969) ;

(15) सी एल सी 1969 पर 1976 का नयाचार ;

(16) तेल प्रदूषण नुकसान के लिए प्रतिकर हेतु अंतरराष्ट्रीय निधि के स्थापन से संबंधित अभिसमय, 1971, और

(17) निधि अभिसमय संबंधी 1976 का नयाचार ।

6.3. **विचाराधीन अभिसमय**—इस समय भारत 6 अं०स०सं० लिखतों के अनुसमर्थन के प्रस्तावों पर विचार कर रहा है। अभिसमय के विचार की वर्तमान प्रास्थिति नीचे दी जा रही है :

	अभिसमय	विचार की वर्तमान प्रास्थिति
1.	तलाशी और बचाव संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1970 और विश्व स्तरीय समुद्रीय कष्ट और सुरक्षा प्रयास का अंगीकरण	विभिन्न संबद्ध विभागों की सहमति पाने के लिए एक प्रारूप टिप्पण 8-8-91 को परिचालित किया गया था। जब कि उनमें से अधिकतर विभागों की टीका टिप्पणी पहले ही अभिप्राप्त कर ली गई है, फिर भी विधि कार्य विभागों की टीका टिप्पणी अभी भी अपेक्षित है। विषय का अनुसरण किया जा रहा है।
2. और 3.	सुरक्षित समुद्रीय नौवहन के विरुद्ध अवैध कृत्यों के दमन के लिए अभिसमय, 1988 और कान्टिनेन्टल शेल्फ पर अवस्थित स्थिर प्लेटफार्मों की सुरक्षा के विरुद्ध अवैध कृत्यों के दमन संबंधी नयाचार, 1988।	विधि मंत्रालय, विदेश मंत्रालय और गृह मंत्रालय के प्रारंभिक अभिमत प्राप्त हो चुके हैं। महानिदेशक, पोत परिवहन उक्त मंत्रालयों से प्राप्त सुझावों की जांच कर रहे हैं।
4.	उद्धारण संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1989।	अभिसमय के प्रस्तावित अनुसमर्थन पर अधिकांश संबद्ध विभागों की सहमति प्राप्त हो चुकी है, जब कि विधि कार्य विभाग की सहमति प्रतीक्षित है।
5.	अपशिष्ट और अन्य पदार्थों का उत्पा करके समुद्रीय प्रदूषण निवारण संबंधी अभिसमय, 1972।	ब्रसेल्स अभिसमय के उपबंधों को ध्यान में रखकर अं०स०सं० में किए गए अध्ययन के वर्तमान प्रक्रम की वांछनीयता के विचार से जांच करने के लिए महानिदेशक पोत परिवहन से अनुरोध किया गया है।
6.	तेल प्रदूषण दुर्घटनाओं के मामलों में खुले समुद्र में हस्तक्षेप संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1969।	जब कि प्रस्तावित अनुसमर्थन पर अधिकांश विभागों की सहमति प्राप्त हो गई है, विधि कार्य विभाग और महासागर विकास विभाग की सहमति अभी अपेक्षित है इस विषय पर कार्यवाई की जा रही है।
7.	तेल प्रदूषण उपक्रम, प्रतिक्रिया और सहयोग संबंधी अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1990।	महानिदेशक पोत परिवहन, अभिसमय की वित्तीय और विधिक/विधायी विवक्षाओं की जांच करने की प्रक्रिया में लगे हैं।

6.4. **अन्य अंतरराष्ट्रीय/सं०रा० अभिसमय**—तल भूपरिवहन मंत्रालय भी, समुद्र की विधि से संबंधित निम्नलिखित सं० रा०/अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों से संबद्ध है :

(i) वहन पत्र से संबंधित विधि के कतिपय नियमों के एकीकरण के लिए अंतरराष्ट्रीय अभिसमय, 1924 (हेग नियम) ;

(ii) हेग विसबाई नियम, 1968 और 1979।

(iii) समुद्र द्वारा माल वहन संबंधी सं० रा० अभिसमय, 1978 (हैम्बर्ग नियम) ;

(iv) लाइनर सम्मेलन के लिए आचरण संहिता संबंधी सं० रा० अभिसमय, 1974।

6.5. हम पूर्वोक्त अभिसमयों पर सारतः विचार करेंगे :

(i) **वहन पत्र से संबंधित विधि के कतिपय नियमों के एकीकरण के लिए अंतरराष्ट्रीय अभिसमय**—जिसका प्रचलित नाम हेग नियम है और जिसे 1924 में अंगीकार किया गया था।

हेग नियम जून 1931 से प्रवृत्त हुए थे। भारत ने इस अभिसमय का मुख्यत: इस कारण अनुसमर्थन नहीं किया था क्योंकि अभिसमय यह अपेक्षा करता है कि वहन पत्र, माल जलयानों द्वारा तटीय व्यापार में माल के वहन की बाबत भी जारी किए जाने चाहिएं, जो भारत को स्वीकार्य नहीं था। तथापि, अभिसमय के शेष उपबंध, भारतीय समुद्र द्वारा माल वहन अधिनियम, 1925 द्वारा शामिल किए गए थे।

(ii) **हेग/विसबाई नियम, 1968 और 1979 (नयाचार)**—वर्ष 1968 में, खोए या क्षतिग्रस्त माल के प्रति पैकेज या एकक के लिए हेग नियम में उपबंधित दायित्व की सीमाएं बढ़ाने के लिए एक नयाचार अंगीकार किया गया था। यह नयाचार, 23-6-77 से प्रवृत्त हुआ। हेग नियमों को 1979 में एक अन्य नयाचार अपनाकर और संशोधित किया गया था जो एस डी आर के कारण इकाई परिवर्तित करता है। ये दोनों नयाचार भारत द्वारा अनुसमर्थित नहीं किए जा सके क्योंकि भारत ने मुख्य अभिसमय का अनुसमर्थन नहीं किया था।

(iii) **समुद्र द्वारा माल वहन संबंधी सं० रा० अभिसमय, 1978**—1978 के नाम से ज्ञात समुद्र द्वारा माल वहन संबंधी अभिसमय, 1978 अंगीकार किया था। यह अभिसमय, हेग नियम और उसके दो नयाचारों को प्रतिस्थापित करने के लिए है। यह अभिसमय अंतरराष्ट्रीय रूप से नवंबर, 1992 से प्रवर्तन में आया है। इस अभिसमय का भारत द्वारा अनुसमर्थन करने या न करने का प्रश्न अभी भी विचाराधीन है।

(iv) **लाइनर सम्मेलन के लिए आचरण संहिता संबंधी सं० रा० अभिसमय, 1974**—बीसवीं शताब्दी की प्रथम अर्धशती तक, समुद्रोद्भूत व्यापार साधारणत: विकसित देशों के वाणिज्यिक जहाजी बेड़ों द्वारा किया जाता था। जब विकासशील देशों ने अपने वाणिज्यिक बेड़ों का निर्माण प्रारंभ किया, तब विकासशील देशों के सागरपार व्यापार के लिए उनके राष्ट्रीय बेड़ों के शेयर की वृद्धि के लिए विकासशील देशों की नौवहन लाइन की सशक्त मांग हुई। परिणामस्वरूप, साम्यापूर्ण स्थोरा अंशधारण के प्रयोजन के लिए और समुद्रोद्भूत व्यापार संबंधी अन्य विषयों के लिए 1974 में लाइनर सम्मेलन के लिए आचरण संहिता संबंधी सं० रा० अभिसमय अंगीकार किया गया।

इस अभिसमय का मूल उद्देश्य व्यवस्थित सार्वभौम समुद्रोद्भूत व्यापार को सुकर बनाना नियमित और दक्ष लाइनर सेवाओं के विकास के बढ़ावा देना और लाइनर पोत परिवहन सेवाओं के प्रयोगकर्ताओं और प्रदायकों के बीच हित का संतुलन सुनिश्चित करना है। इस अभिसमय के स्थोरा उपबंधों में यह उपबंध है कि दो देशों के बीच व्यापार प्रत्येक व्यापारकर्ता देश की 40% तक राष्ट्रीय लाइनों द्वारा किया जाएगा और तृतीय देश की लाइनों पर 20% तक किया जा सकता है।

भारत ने यह अभिसमय, 1978 में अनुसमर्थित किया था। तथापि, संहिता 6-10-83 से अंतरराष्ट्रीय रूप में प्रवर्तित हुई थी। केन्द्रीय सरकार द्वारा, 1986 में, संहिता के उपबंध को प्रभावी बनाने के लिए विधान पुर:स्थापित करने का प्रस्ताव अनुमोदित किया गया था। तिस पर भी, वाणिज्य मंत्रालय द्वारा भारत के विदेशी व्यापार पर प्रतिकूल प्रभाव के बारे में व्यक्त की गई कुछ आशंकाओं को ध्यान में रखते हुए संसद् में विधान पुर:स्थापित नहीं किया जा सका था। अत: मंत्रालय विचार विमर्श के आधार पर एक उपांतरित अविधायी स्थोरा समर्थक स्कीम तैयार की गई थी और सरकार ने अब इस स्कीम का कार्यान्वियन अनुमोदित कर दिया है। इस उपांतरित स्कीम में सं० रा० अभिसमय लाइनर संहिता के प्रति कोई निर्देश नहीं किया गया है।

पाद टिप्पण—अध्याय 6

1. भूतल परिवहन मंत्रालय के 19-4-1994 के अ० शा० पत्र सं० एस आर 11011/10/88-एम० ए० के आलोक में स्थिति का वर्णन किया गया है।

खंड 4

अध्याय 7

विधि को अद्यतन बनाने के लिए प्रयत्न

7.1. **पूर्ववर्ती** अध्यायों में किए गए विचार विमर्श से इस देश में समुद्रीय विधि की दयनीय असंतोषजनक स्थिति प्रकाश में आ जाती है। यह केवल देश में हुए राजनैतिक और संवैधानिक परिवर्तनों के साथ कदम मिलाकर चलने में ही असफल नहीं रही है अपितु अन्य सामुद्रिक देशों से भी काफी पीछे रह गई है। समुद्रीय विषयों में विवाद, बहुधा, अंतरराष्ट्रीय प्रकृति के होने के कारण संप्रति, विधि की स्थिति, उपनीय है और देश की प्रभुत्वसंपन्न प्रास्थिति के लिए असम्मान जनक भी है। इन कमियों और खामियों पर उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णय के दौरान अनेक विवाद्यकों पर खुलकर चर्चा की है, हम उन सभी विवाद्यकों पर पुनः चर्चा करना आवश्यक नहीं समझते हैं।

7.2. **परवीन सिंह समिति**—किन्तु उच्चतम न्यायालय को इस विषय पर कार्रवाई करने का अवसर मिलने के पहले से ही पोत परिवहन उद्योग समय समय पर भारत की नावधिकरण विषयक विधि अद्यतन बनाने की आवश्यकता को प्रकाश में लाता रहता था जो कि पोत परिवहन उद्योग का आवश्यकताओं की अनुक्रियात्मक तथा समुद्रीय विवादों के दक्ष और त्वरित निपटान की संचालक हो। विधि की इस शाखा की स्थिति की जांच करने की अत्यावश्यकता को मान्यता देते हुए, भारत सरकार के जल भूतल परिवहन मंत्रालय ने नावधिकरण विषयक अधिकारिता में प्रयोग में उच्च न्यायालयों की भूमिका पर दिसम्बर, 1986 में तत्कालीन पोत परिवहन महानिदेशक श्री परवीन सिंह की अध्यक्षता में, इस विषय की गहन छानबीन करने के लिए एक समिति गठित की। समिति के निर्देश के निबंधन निम्नवत् थे :—

"(क) नावधिकरण विषयक अधिकारिता से संबंधित विभिन्न पक्षों का, जिनके अंतर्गत अन्य देशों में हुई प्रगति और इस अधिकारिता पर अपनाए गए अंतराष्ट्रीय अभिसमय भी है, अध्ययन करना;

(ख) कथनों, उद्देश्यों और कारणों की व्याख्यात्मक रिपोर्ट से समर्थित कौन सा अद्यतन समेकित समुद्रीय विधान पुरःस्थापित किया जा सकेगा, उसकी सिफारिश करना; और

(ग) नावधिकरण और समुद्रीय विवादों पर अधिक प्रभावी रूप से कार्रवाई करने के प्रयोजन के लिए पृथक नावधिकरण विषयक अधिकारिता/नावधिकरण विषयक न्यायालयों/अधिकरणों को स्थापित करने के लिए विनिर्दिष्ट सुझाव देना।"

समिति ने 1987 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। रिपोर्ट दो खंडों में थी। समिति ने अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य का सर्वेक्षण किया, भारत में लागू विद्यमान विधि पर और आधुनिक जरूरतों के लिए अनुवर्ती बनाने के लिए उसमें जरूरी परिवर्तनों पर विचार विमर्श किया। उसने नावधिकरण विषयक अधिकारिता के कार्यक्षेत्र को परिभाषित करने वाले एक विधान के अधिनियमन की सिफारिश की और विचारार्थ भारतीय नावधिकरण विषयक अधिनियम का प्रारूप प्रस्तुत किया। समिति ने नावधिकरण विषयक अधिकारिता के प्रयोग में उच्च न्यायालयों की भूमिका पर चर्चा की और तथा नावधिकरण विषयक विधि का प्रशासन करने वाले न्यायालयों की प्रकृति के पुनः नवीकरण का सुझाव दिया। निर्देश निबंधनों को अंतर्विष्ट करने वाला पत्र और भारतीय नावधिकरण विषयक अधिनियम तथा नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिनियम के दो प्रारूप रिपोर्ट के तीन उपाबंधों के रूप में है[3]।

4—1 M of L&J/ND/99

7.3. **नावधिकरण अधिकारिता विषयक स्थिति**—समिति ने यह नोट किया कि इंगलिश एडमिरल्टी ऐक्ट के अधीन, जो भारतीय न्यायालयों की अधिकारिता के लिए आधार बना था, न्यायालयों के क्षेत्र को केवल निम्नलिखित की बाबत नावधिकरण विषयक अधिकारिता थी :—

(क) पोतों के निर्माण, साज-सज्जा या मरम्मत के लिए दावे;

(ख) किसी पोत को आपूर्त आवश्यक वस्तुओं के लिए दावे;

(ग) किसी पत्तन पर निर्यात किए गए स्थोरा के नुकसान के लिए दावे;

(घ) किसी पोत द्वारा किए गए नुकसान के लिए दावे;

(ङ) स्वामित्व, नियोजन और उपार्जन संबंधी दावे;

(च) उद्धारण;

(छ) किसी पोत के मास्टर द्वारा मजदूरी और वितरण के लिए दावे; और

(ज) बंधकों से उत्पन्न होने वाले दावे।

समिति ने नोट किया कि सामुद्रिक विषयों में दावेदार, प्रायः पोत के स्वामी के विरुद्ध ही अनुतोष मांगने के लिए प्रवृत्त नहीं होता है, अपितु वह बहुधा, पोत की गिरफ्तारी के रूप में भी अनुतोष चाहता है क्योंकि वह सबसे अधिक प्रभावी साधन है जिससे दावे और साथ ही समुद्रीय धारणाधिकार और बंधक भी प्रवृत्त किए जा सकते थे। पहले समुद्रीय धारणाधिकार और समुद्रगामी पोतों की गिरफ्तारी के लिए प्रयास किए गए थे।[4] किन्तु वे असफल रहे। अंतरराष्ट्रीय समुद्रीय संगठन[5] और यू एन सी टी ए डी[6] द्वारा कमेटी मैरिटाइम इन्टरनेशनल के परामर्श से एक नया प्रयास किया जा रहा था किन्तु नया अभिसमय अंगीकार किए जाने तथा उसे प्रवर्तन में लाने के लिए देशों की अपेक्षित संख्या द्वारा अनुसमर्थित किए जाने में मजबूरन काफी समय लगने वाला था। इसी बीच, अनेक देशों ने समुद्रीय धारणाधिकार और दावों को शासित करने के लिए अपनी स्वीय विधियां अपना ली थीं। इंगलैंड में भी नया विधान अधिनियमित किया गया था। किन्तु भारत, एडमिरल्टी ऐक्ट, 1861 में यथा पूर्वाच्छादित अप्रचलित ब्रिटिश ला का अनुसरण कर रहा था इसमें परिवर्तन तो होना ही था। विधान के कार्यक्षेत्र को बढ़ाना आवश्यक था ताकि उसमें तेल प्रदूषण, नुकसानी जीवन की हानि, दैहिक क्षति, पोत का कर्षण, शुल्क, पोत का संचालन, पत्तन देय, पोतों के पोत स्वामियों और अभिकर्ताओं द्वारा किए गए संवितरण, साधारण माध्य, पोतबंधक बंधपत्रों, पोतों या स्थोरा का समयहरण या दंडादेशन और अन्य विषय आ सकें। सर्वबंधी और व्यक्तिबंधी अधिकारिता के प्रयोग के लिए उपबंध करना और केवल उस पोत की ही नहीं जो नुकसान कारित करता है अपितु किसी सहपोत अर्थात् उसी स्वामी के फायदाप्रद स्वामित्व के अधीन किसी पोत की भी गिरफ्तारी को भी समर्थ बनाने वाले उपबंध भी करना आवश्यक है। उन दावों के अधिमानों की बाबत विधिक उपबंध अधिकथित करना भी आवश्यक था जो किसी पोत के विक्रय आगम से विशिष्टतः किसी पोत के उद्धारण के दावों के सिवाय सभी अन्य दावों पर कर्मी दल की मजदूरी के लिए कुछ सीमा तक अधिमान की व्यवस्था को सुलझाने के लिए उद्भूत होंगे। स्वामियों के चाहे वे भारत के निवासी हों या विदेशों के और बन्धकों तथा प्रभारों के भी, चाहे वे रजिस्ट्रीकृत हों या नहीं और चाहे भारत में सृजित हों या विदेश में, दावों को शामिल करना भी आवश्यक था। प्रस्थापित कुछ अन्य महत्वपूर्ण उपबंध निम्नवत् थे :—

(1) चूंकि भारतीय पोत, वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 के अधीन भारत सरकार के पूर्ण नियंत्रण के अंतर्गत हैं अतः किसी भारतीय पोत की गिरफ्तारी, तब तक प्रभावित नहीं की जानी चाहिए जब तक कि स्वामी को कम से कम छह दिन की सूचना न दे दी गई हो और वह दावों की पूर्ति के लिए न्यायालय को प्रतिभूति की व्यवस्था करने में असफल न हो गया हो।

(2) ऐसे अपर पक्षकारों के हितों का, जिनका कोई दावा हो सकता है, समाचार पत्रों में 90 दिन की सूचना देकर संरक्षण किया जाना चाहिए।

(3) यदि एक बार न्यायालय के आदेश द्वारा किसी पोत का विक्रय किया जाता है तो क्रेता, दावों की बाबत बिना किसी दायित्व के सभी विल्लंगमों से मुक्त हक पाएगा।

(4) न्यायालय को, बंधकों और सामुद्रिक धारणाधिकारों के बीच की भांति आंतरिक अधिमान अधिकथित करने के लिए सशक्त होना चाहिए।

(5) सूचना का उपबंध, जहां किसी विदेशी पोत के विरुद्ध वाद फाइल किया जाता है। भारत में विदेश के कौंसिल/मिशन को सूचना।

इन पहलुओं पर विचार करते हुए और उस विधान से जो इस निमित्त यूनाइटेड किंगडम, सिंगापुर और अन्य कामन ला देशों में अधिनियमित किए गए थे, फायदा उठाते हुए समिति ने अपना भारतीय नावधिकरण अधिनियम, प्रारूपित किया था।

7.4. **नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालयों पर समिति के विचार**—समिति ने इस तथ्य पर विचार किया कि संप्रति नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग केवल मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास के उच्च न्यायालयों द्वारा ही किया जा रहा है तथा गुजरात, आंध्र प्रदेश और उड़ीसा के उच्च न्यायालयों ने राज्यों के पुनर्गठन[8] से संबंधित अधिनियमितियों के अधीन ऐसी अधिकारिता प्राप्त कर लेने का दावा किया है। तथापि समिति का यह मत था कि केन्द्रीय सरकार के लिए नावधिकरण विषयक न्यायालय[9] नाम से ज्ञात नावधिकरण विषयक स्वतंत्र न्यायालयों का गठन करना और विद्यमान उच्च न्यायालयों से नावधिकरण विषयक अधिकारिता को वियुक्त करना आवश्यक था कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि सामुद्रिक दावे अविभक्त रूप से प्राप्त हों और विशेषज्ञ उन पर तुरंत ध्यान दे सकें। यह सुझाव दिया गया था कि नावधिकरण विषयक न्यायालयों में भिन्न-भिन्न विनिश्चयों से अपवर्जन के लिए प्रथम अपील स्वीकार करने के लिए एकल नावधिकरण विषयक अपील न्यायालय गठित किया जाना चाहिए। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम[10] में अंतर्विष्ट उपबंधों के परिप्रेक्ष्य में इन न्यायालयों के गठन के लिए सुझाव दिए गए थे। उच्च न्यायालय मुम्बई द्वारा विरचित नियमों के अंगीकरण के लिए और न्यायालय फीस[11] और खर्चे विहित करने के लिए नियमों की विरचना के लिए भी सुझाव दिए गए थे। नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिनियम का एक प्रारूप भी, प्रस्तुत किया गया जिसमें इस विचार विमर्श को ध्यान में रखा गया था।

7.5. **विधि मंत्रालय की टिप्पणी**—समिति की रिपोर्ट पर विधि मंत्रालय में विचार किया गया था जहां कतिपय पृच्छाएं उठाई गई प्रतीत होती हैं :—

(1) क्या नावधिकरण विषयक न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर कतिपय अन्य हेतुक शामिल नहीं किए जा सकते;

(2) क्या नावधिकरण विषयक न्यायालयों की परिभ्रमण काष्ठ पर भी अधिकारिता होगी;

(3) क्या सामुद्रिक दावे फाइल करने के लिए कोई परिसीमा विहित की जानी चाहिए;

(4) क्या 1861, 1890 और 1891 के अधिनियमों को निरसित नहीं करना पड़ेगा और यदि ऐसा है तो क्या दोनों प्रस्तावित विधानों के उपबंधों को, ब्यौरे तैयार करने के पश्चात् शामिल करके एक अधिनियमन पर्याप्त नहीं होगा;

(5) क्या प्रस्तावित विधान के उपबंधों से विद्यमान परिनियमों अर्थात् समुद्र द्वारा माल वहन अधिनियम, 1925, वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 और महापत्तन न्यास अधिनियम, 1963 का संशोधन आवश्यक होगा;

(6) क्या प्रस्तावित विधान से नावधिकरण विषयक अपराधों से संबंधित नावधिकरण विषयक अधिकारिता (भारत) अधिनियम, 1860 और नावधिकरण विषयक अपराध (औपनिवेशिक) अधिनियम, 1849 का निरसन आवश्यक हो जाएगा ; और

(7) क्या एलिजाबैथ के मामले[12] में, उच्चतम न्यायालय के विनिश्चय के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तावित विधानों के पुनरीक्षण की कोई आवश्यकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों संबंधित मंत्रालयों के बीच कुछ पत्राचार हुआ है और विषय विचाराधीन है, अभी तक कोई अंतिम विनिश्चय नहीं हुआ है।

7.6. **विधि आयोग का कार्य**—इसी बीच, विधि आयोग ने, **एलिजाबैथ के मामले**[1] में उच्च न्यायालयों के प्रेक्षणों और निर्देशों के मतवैभिन्य में, स्वप्रेरणा से इस विषय पर अध्ययन किया है और परवीन सिंह समिति के विचारों तथा उन पर ऊपर निर्दिष्ट टिप्पणी को ध्यान में रखकर यह रिपोर्ट प्रस्तुत कर रहा है। जैसा पहले बताया गया है कि इस रिपोर्ट में सामुद्रिक विधि के सभी पक्षों पर या विधि के इस क्षेत्र को[13] लागू विद्यमान परिनियमों के उपबंधों पर विचार नहीं किया गया है, इसके बजाय यह **परवीन सिंह समिति रिपोर्ट** में चर्चित निम्नलिखित दो प्रमुख बातों तक ही सीमित है :—

(1) नावधिकरण विषयक अधिकारिता का क्षेत्र और विस्तार, और

(2) भारत के लिए नावधिकरण विषयक न्यायालय।

इन दोनों विषयों पर आयोग के विचार आगे के दो अध्यायों में अधिकथित हैं।

पाद-टिप्पण—अध्याय 7

1. देखिए, एम० वी० एलिजाबैथ बनाम हार्वन इन्वेस्टमेंट एंड ट्रेडिंग कंपनी लिमिटेड, जे टी (1992) 2 एस सी 65।

2. समिति के अन्य सदस्य थे : श्री के० सी० सिधवा, वरिष्ठ केन्द्रीय सरकार अधिवक्ता; डा० एस० एन० संकल्वा (इंडियन शिपओनर्स एसोसियेशन के प्रतिनिधि) : श्री एच० एन० फोतेदार (प्रबंध निदेशक, इंडियन पोर्टस एसोसियेशन) : श्री एस वेंकटेश्वरन (अधिवक्ता); डा० लियो बर्निस (महासचिव, नेशनल यूनियन आफ सी फेयरर्स आफ इंडिया) ; और मेसर्स मूल्ला, क्रेगी ब्लंट एंड केयर्स, सालिसिटर्स के श्री बी० एस० भैसनियाल; श्री पी० एम० शेटी, उप महानिदेशक पोत परिवहन, समिति के सदस्य के सचिव थे।

3. संदर्भ की सुविधा के लिए समिति की रिपोर्ट के उपाबंध, इस रिपोर्ट के उपाबंध बनाए गए हैं।

4. ये अभिसमय क्रमशः 1926 और 1952 में अंगीकार किए गए थे किन्तु अनुसमर्थित नहीं किए गए थे।

5. अंतरराष्ट्रीय सामुद्रिक संगठन।

6. संयुक्त राष्ट्र।

7. कोमिटि मैरिटाइम इंटरनेशनल।

8. दावा, जो एलिजाबैथ के मामले में, जे टी 1992 (2) उच्चतम न्यायालय द्वारा अनुमोदित किया गया था।

9. आरंभिक तौर पर, कलकत्ता, मुम्बई, मद्रास और कोचीन में ऐसे चार, न्यायालय ही पर्याप्त समझे गए थे।

10. जैसा कि संपत कुमार के मामलों में निर्वचन किया गया, ए आई आर 1987 एस सी 386।

11. "कर्मोदज जलयानों" के लिए इन नियमों के शिथिलीकरण का सुझाव दिया गया था।

12. जे टी 1992 (2) एस सी 65।

13. देखिए पैरा 2.8 - पूर्वोक्त।

अध्याय 8

नावधिकरण अधिकारिता की प्रकृति और उसका विस्तार

8.1. इस विषय पर भारतीय विधि की पुरातन स्थिति और उसकी अपर्याप्तता पर बार-बार जोर देने की आवश्यकता नहीं है। सौभाग्य वश जैसा कि प्रारंभ में ही उल्लेख किया गया है भारत में जब देश के राजनीतिक ढांचे में परिवर्तन हुआ संक्रमणकालीन विधियां पारित करके इस विषय में पूर्ण दुर्व्यवस्था की स्थिति को दूर कर दिया गया। यह भी एक ओर अनेक उच्च न्यायालयों को नावधिकरण अधिकारिता न देकर तथा भारतीय न्यायशास्त्र को 1891 के स्टेट्यूट के पूर्व तथा इंगलैंड में निर्वचन विधि तक सीमित करने के प्रयास से लगभग प्राय समाप्त हो गया है। किन्तु सुप्रीम कोर्ट द्वारा **एलिजाबेथ के मामले** में[1] दूरदृष्टि परक तथा उदयदृष्टिकोण अपनाने के कारण ही इस विषय पर भारतीय विधि हास्यास्पद तथा बेतुकापन के क्षेत्र में लगभग समाप्त होने से बच गई।

8.2. यद्यपि उच्चतम न्यायालय के निर्णय के पश्चात् सामान्य स्थिति ठोस रूप धारण कर चुकी है तथा कुछ-कुछ निश्चित हो गई है तथापि नावधिकरण अधिकारिता के परिक्षेत्र तथा विस्तार पर सदियों पुराने कानून के स्थान पर स्वतंत्र विधान अधिनियमित करने की आवश्यकता है।

8.3. ऐसे विधान की विषय-वस्तु पर विचार करते समय हमारा कार्य हाल ही में यूनाइटेड किंगडम[2] में पुरःस्थापित विधान द्वारा अपेक्षाकृत सरल हो गया है। **प्रवीन सिंह समिति** ने, जिसने ऐसे विधान की सर्वाधिक आवश्यकता महसूस की, उच्चतम न्यायालय के मार्गदर्शन के अभाव में, यूनाइटेड किंगडम के विधान तथा सिंगापुर और अन्य देशों में पुरःस्थापित विधानों पर विचार किया तथा नावधिकरण अधिनियम का प्रारूप तैयार किया जो कि इस रिपोर्ट[3] में उपाबद्ध है। आयोग ने पूर्वगामी अध्याय में विभिन्न सुधारों और परिवर्धनों का उल्लेख किया है जो उक्त समिति ने हमारे देश की आवश्यकता को देखते हुए आवश्यक समझा। वह प्रारूप मुख्य रूप से यूनाइटेड किंगडम के सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 पर आधारित है और इसने उन पहलुओं और विशेषताओं को ध्यान में रखा है जिसे समिति ने विशेष उल्लेख या उपबंध के लिए आवश्यक समझा।

8.4. विधि मंत्रालय द्वारा जलभूतल परिवहन मंत्रालय से इसके पत्राचार में प्रारंभिक प्रक्रम पर उठाए गए विभिन्न प्रश्नों के संबंध में जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है, हम निम्नलिखित विचार व्यक्त करना चाहते हैं :—

(1) वे कारण जिनकी बाबत नावधिकरण अधिकारिता का विस्तार किया जा सकता है यूनाइटेड किंगडम के 1981 के अधिनियम और अन्य हाल के विधानों को ध्यान में रखते हुए प्रस्तावित कानून में व्यापक रूप से परिवर्णित किया गया है। यह आवश्यक प्रतीत नहीं होता कि प्रस्तावित धारा 2 में और कोई कारण जोड़ा जाएगा।

(2) इस प्रश्न के संबंध में कि क्या नावधिकरण अधिकारिता के परिक्षेत्र के बारे में और उसे शासित करने के लिए सशक्त-न्यायालय के बारे में पृथक् अधिनियमितियां होनी चाहिए, हमारा विचार है कि आगामी अध्याय में अंतर्विष्ट कारणों से ऐसा कोई पृथक् अधिनियमित आवश्यक नहीं है। संक्षेप में हमारी राय है कि इस समय नावधिकरण अधिकारिता उच्च न्यायालय में निहित होनी

चाहिए और भारत के सभी उच्च न्यायालयों में यह अधिकारिता विहित होनी चाहिए किन्तु यदि किसी पश्चात्‌वर्ती प्रक्रम पर यह पाया जाता है कि नावधिकरण अधिकारिता अन्य न्यायालयों को भी प्रदान की जानी चाहिए तो इस अधिकारिता को जिला के प्रधान सिविल न्यायालय को प्रदान करने के लिए कार्रवाई की जानी चाहिए । इसे समिति द्वारा प्रस्तावित भारतीय नावधिकरण अधिनियम की धारा 1 और 2(क) का संशोधन करके और समिति द्वारा प्रस्तावित नावधिकरण न्यायालय अधिकरण को छोड़कर प्रभावी बनाया जा सकता है ।

(3) इस प्रश्न के बारे में कि क्या "होवरक्राफ्ट" को प्रस्तावित अधिनियमिति के अंतर्गत लाया जाना चाहिए । हमारा विचार है कि संप्रति-उत्तर नकारात्मक होना चाहिए । निःसंदेह यू० के० सुप्रीम कोर्ट, ऐक्ट, 1981 ने शिप (जहाज) को परिभाषित किया है कि उसके अंतर्गत होवरक्राफ्ट भी है । किन्तु यह होवरक्राफ्ट ऐक्ट, 1968 के उपबंधों के अधीन रहते हुए हैं जो विधान के लागू होने को काउंसिल में आदेश द्वारा अपवर्जित या उपांतरित किए जाने योग्य बनाती है । इसके अतिरिक्त होवरक्राफ्ट के विनियमन का प्रभाव न केवल समुद्र द्वारा माल के वहन से संबंधित विधान पर पड़ेगा वरन् उसका प्रभाव वायुयान से वहन से संबंधित विधान तथा सड़क यातायात संबंधी विधान पर भी पड़ेगा । भारत में इंगलैंड के होवरक्राफ्ट ऐक्ट, 1968 के समान कोई विधान नहीं है । इन पहलुओं की अभी और समीक्षा की जानी है । अतः हम तद्‌नुसार ऐसा उचित नहीं समझते हैं कि "होवरक्राफ्ट" को इस समय नावधिकरण विधि के भागरूप में सम्मिलित किया जाए । इसे यदि बाद के प्रक्रम पर आवश्यक समझा जाता है तो सरलता से किया जा सकेगा ।

(4) यह सत्य है कि यू० के० ऐडमिरल्टी ऐक्ट, 1861 का लागू बने रहना समाप्त किया जाए और कोलोनियल कोर्टस आफ ऐडमिरेल्टी (इंडिया) ऐक्ट, 1890, दि कोलोनियल ऐडमिरेल्टी जुरिस्डिक्शन ऐक्ट, 1891 को निरसित करना पड़ेगा । इसे समिति द्वारा तैयार किए गए प्रारूप विधान में एक ऐसा उपयुक्त उपबंध जोड़कर किया जा सकता है जैसा कि आगे बताया गया है । नावधिकरण अपराध (उपनिवेश) अधिनियम, 1849 और नावधिकरण अधिकारिता (भारत) अधिनियम, 1890 को भी निरसित किया जाना होगा किन्तु नावधिकरण अपराधों की बाबत अधिकारिता प्रदान करने के लिए प्रस्तावित विधान में एक उपबंध जोड़ा जाना आवश्यक है ।

(5) ऐलिजाबेथ के मामले[6] में सुप्रीम कोर्ट के विनिश्चय से प्रस्तावित विधान में किसी परिवर्तन की अपेक्षा नहीं है । पोत परिवहन अधिनियम, 1958 और विमान परिवहन अधिनियम, 1925 में निर्णय के पैरा 81 और 82 में व्यक्त विचारों के प्रकाश में संशोधन अपेक्षित है । इस पर पृथक् रूप से बाद में तब विचार किया जा सकता है जब इन अधिनियमितियों पर विचार किया जाएगा ।

8.5. उपर्युक्त विचार विमर्श से, यह स्पष्ट हो जाता है कि नावधिकरण विधि के क्षेत्र में संसद् द्वारा विधान का अधिनियमन प्रतिष्ठा और आवश्यकता दोनों दृष्टियों से अनिवार्य है । भारत अब स्वतंत्र राष्ट्र है और यह इसकी प्रभुसत्ता के अनुरूप नहीं है कि एक शताब्दी से अधिक समय पूर्व अधिनियमित ब्रिटिश स्टेट्यूट इसकी सामुद्रिक विधि को शासित करे । इसके अतिरिक्त हाल के वर्षों में भारत के सामुद्रिक व्यापार और वाणिज्य के व्यापक विस्तार से आर्थिक नीतियों के उदारीकरण के परिणामस्वरूप भविष्य में उनके और वि

स्तार करने की स्पष्ट संभावना और व्यापार के विश्व परिदृश्य के रूप में उभरने से विधि की इस शाखा को आने वाले वर्षों में अधिक महत्व मिलेगा तथा यह आवश्यक और वांछनीय है कि इसे विनिर्दिष्ट भारतीय विधान के अन्तर्गत लाया जाए । अतः हम परवीन सिंह समिति से सहमत हैं कि ऐसे विधान को प्रारूपित किए जाने का प्रयास किया जाए ।

8.6. जैसा पहले उल्लेख किया गया है कि यह कार्य इस विषय पर हाल के यू० के० विधान की विद्यमानता से काफी हद तक सरल हो गया है । इस देश में शासित समुद्री विधि सर्वथा अंग्रेजी विधि पर आधारित है तथा यह भी है कि उस विधि में संपूर्ण विश्व में संचालित विधि को काफी हद तक प्रभावित किए हुए हैं । अतः यह केवल समीचीन ही नहीं बल्कि स्वाभाविक होगा कि हमारा प्रस्तावित विधान आधारिक रूप से यू० के० के विधान पर आधारित हो किन्तु उसमें हमारी आवश्यकताओं के अनुरूप सुधार और परिवर्धन भी किया जाए । यू० के० के अधिनियम तथा परवीन सिंह समिति द्वारा सुझाए गए विधान के विधान पर विचार करने के पश्चात् हमने प्रारूप नावधिकरण अधिनियम तैयार किया है जो इस रिपोर्ट के उपाबंध-viii के रूप में उपाबद्ध है ।

8.7. यद्यपि प्रस्तावित प्रारूप विधेयक स्वतः स्पष्ट है तथापि हम यह आवश्यक समझते हैं कि प्रस्तावित विधान की मुख्य विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन किया जाए । इस पर दो भागों में विचार किया जा सकता है : (i) न्यायालय जो नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग करेंगे और (ii) उनकी अधिकारिता की परिधि और सीमा । इनमें से प्रथम विषय पर आगामी अध्याय 9 में पर्याप्त विस्तार से चर्चा की गई है । यहां हम दूसरे विषय में मुख्य पहलुओं पर चर्चा करेंगे ।

8.8. अब अनेक विषय जो नावधिकरण अधिकारिता की परिधि में आते हैं वे सामुद्रिक दावे, संविदा, अपकृत्य आदि से विशेष रूप से संबंधित हैं । अनेक ऐसे पहलू हैं जो अवस्थिति, व्यक्ति, विदेशी, संपत्ति, यान, जलविमान के संबंध में नावधिकरण अधिकारिता से संबंधित तथा कुछ ऐसे सिद्धांत हैं जो नावधिकरण विषयों में अपकृत्य दायित्व को शासित करते हैं जो न्यायिक पूर्वन्यास द्वारा शासित होते हैं और जिसके बारे में इस विधान में चर्चा करना आवश्यक होगा । नावधिकरण कार्रवाई की मुख्य विशेषता सार्वभौम कार्यवाही और व्यक्तिगत कार्यवाई के बीच अंतर है । नावधिकरण विधि दावा करने वाले को किसी पोत या पोतभार के विरुद्ध सार्वभौम अधिकार प्रदान करती है जो स्वामी के विरुद्ध व्यक्तिगत अधिकार से भिन्न होता है । इस प्रकार की कार्रवाई की मुख्य विशेषताएं ऐलिजाबेथ के मामले[8] में विस्तार से बताई गई है और उन्हें यहां विस्तार से बताने की आवश्यकता नहीं है । न्यायालय ने उल्लेख किया है :—

> "नावधिकरण की सार्वभौम कार्रवाई का जैसी इंगलैंड में या यूनाइटेड स्टेट में प्रचालित है, अनेक देशों द्वारा अनुसरण नहीं किया जाता है । अनेक देशों में जहां सिविल विधि अपनाई जाती है सभी कार्यवाहियां व्यक्तिगत कार्रवाई द्वारा प्रारंभ की जाती हैं । इस विषय में सक्षम न्यायालय को पोत की कुर्की का आदेश देने की शक्ति होती है यदि उसे यह विश्वास हो जाता है कि वादी को उसकी प्रतिभूति को देने की संभाव्यता है जब तक कि पोत को उसकी अधिकारिता में ही न रोके रखा जाए । न्यायालय के हाथ व्यक्तिगत कार्रवाई की तकनीकियों से बंधे नहीं होते और कार्यवाहियों की परिधि सामुद्रिक ग्रहणाधिकार या दावे तक सीमित नहीं होती......
>
> इंगलिश और सिविल दोनों विधि प्रणालियों में गिरफ्तारी का वास्तविक प्रयोजन डिक्री की तुष्टि के किस प्रतिभूति प्राप्त करना है यद्यपि इंगलैंड में गिरफ्तारी अधिकारिता ग्रहण करने का आधार होती है जब तक कि स्वामी अधिकारिता के प्रति समर्पण नहीं करता है । किसी देश में जब एक बार गिरफ्तारी कर ली जाती है और स्वामी उपस्थित हो

जाता है तो कार्यवाही व्यक्तिगत रूप से चलती रहती है । सिविल ला में सभी कार्यवाहियां चाहे वे नावधिकरण की हों या नहीं—व्यक्तिगत होती हैं और यान की गिरफ्तारी गैर नावधिकरण कार्रवाई चाहे वह सार्वभौम हो या व्यक्तिगत हो सुपरिभाषित सामुद्रिक धारणाधिकार और दावे तक सीमित होती है तथा वह (वस्तु) के (पोत, पोतभार तथा भारक) के विरुद्ध जो विवाद की विषयवस्तु है या विवादित (वस्तु) के रूप में उसी फायदाग्राही स्वामित्व में अन्य पोत के विरुद्ध निर्देशित होती है ।"

इन संप्रेक्षणों के प्रकाश में और सामुद्रिक विषयों में पोत के विरुद्ध प्रभावी उपचार की महत्ता को ध्यान में रखते हुए हमने सार्वभौम कार्रवाई और व्यक्तिगत कार्रवाई के बीच भेद बनाए रखने का प्रस्ताव किया है । किन्तु उसी समय प्रस्तावित अधिनियमिति न्यायालय को यह अधिकार प्रदान करती है कि किसी विशिष्ट मामले में किसी प्रक्रम पर और समुचित रूप का विनिश्चय करे तथा और उचित निदेश तथा आदेश दे और यह सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक अनुतोष मंजूर करे कि कार्रवाई के रूप के बारे में तकनीकियों से पक्षकारों के विधिमान्य दावों और अधिकारों[9] का हनन न हो । अन्य बातों के साथ-साथ यह सुनिश्चित करने के लिए अनुपूरक उपबंध समाविष्ट किए गए हैं कि नावधिकरण अधिकारिता के अंतर्गत भारतीय पोत के संबंध में मजदूरी के लिए दावाग्रहण करने की अधिकारिता है।[10] किसी पोत संपत्ति के विक्रय की बीजबस्त तथा विक्रय के आगमों के वितरण की रीति तथा उसके संबंध में दावों की पूर्विकता के क्रम[11] की बाबत उपबंध भी सम्मिलित किए गए हैं । पूर्विकता पोत पर कर्मीदल को शोध्य मजदूरी और अन्य रकम को दी गई है, छह मास की अवधि के लिए मजदूरी इस प्रकार शोध्य मजदूरी के अतिशेष से उच्चतर पूर्विकता वाली होगी ।[12] सामुद्रिक धारणाधिकार की कुर्की का विषय तथा उनके समापन के बारे में भी चर्चा की गई है ।[13] इसके अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार को नावधिकरण मामलों में न्यायालयों में प्रक्रिया और परिपाटी जिसके अंतर्गत न्यायालय फीस तथा खर्चे भी हैं, शासित करने वाले नियम[14] बनाने की शक्ति प्रदान की गई है ।

8.9. नावधिकरण मामलों में प्रक्रिया वही होगी जो सिविल न्यायालयों में वादों तथा अन्तर्संबद्ध मामलों में होती है । अतः जहां तक हो सके इन कार्यवाहियों में सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का 5) लागू होगी । तथापि इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए कि कभी-कभी ऐसे कठिन विवाद्यक जिनमें तकनीकि मूल्यांकन अंतर्वलित हों, उत्पन्न हो सकते हैं, न्यायालय को जहां आवश्यक हो, निर्धारक की सहायता प्राप्त करने में समर्थ बनाने का उपबंध किया गया है । प्रथम अपील के किस उपबंध और माध्यम को निर्देशित करने में समर्थ बनने वाले उपबंध भी प्रस्तावित विधान में सम्मिलित किए गए हैं ।[15]

8.10. इस स्थल पर एक अन्य पहलू का उल्लेख करना आवश्यक है । विद्यमान कानूनों में कुछ उपबंध हैं जिन पर ध्यान दिया जाना चाहिए । वाणिज्य पोत अधिनियम, 1958 में अधिकारिता के संबंध में उच्च न्यायालय की परिभाषा है तथा विदेशी पोत[16] के रोके जाने को प्राधिकृत करने वाला उपबंध भी है । भारतीय समुद्र द्वारा माल का वहन अधिनियम, 1925 में माल ढोने वाले (कैरियर) पर कुछ दायित्व और जिम्मेदारियां अधिरोपित करने वाले तथा कुछ अधिकार उन्मुक्तियां प्रदान करने वाले उपबंध हैं । हमने इन उपबंधों को नहीं छुआ है क्योंकि वे इस रिपोर्ट द्वारा प्रस्तावित प्रारूप विधान की विषय-वस्तु पर प्रत्यक्षतः आक्रमण नहीं करते और उन पर तब विचार किया जा सकता है जब इन अधिनियमों का पुनरीक्षण किया जाए । तथापि प्रस्तावित विधान में कुछ विद्यमान कानूनों के निरसन की मांग की गई है और इस संबंध में उपबंध किए गए हैं ।[17]

8.11. हम आशा करते हैं कि प्रस्तावित प्रारूप विधान की विस्तृत रूप-रेखा प्रारूप (उपाबंध viii) के उपबंध के उचित मूल्यांकन को सुकर बनाएगी ।

पाद टिप्पण—अध्याय 8

1. जे टी 1992 (2) एस० सी० 65 ।
2. ऐसा प्रतीत होता है कि सिंगापुर और अन्य देशों में इसी प्रकार के विधान हैं किंतु यू० के० विधान की पूर्णता को ध्यान में रखते हुए उन पर विचार करना शायद आवश्यक है।
3. और यह रिपोर्ट तथा उपबंध I से III तक ।
4. देखिए पिछला अध्याय 7 ।
5. "होवरक्राफ्ट" से ऐसा यान अभिप्रेत है जो इस प्रकार अभिकल्पित है कि वह जब गति में हो तो यान से निकली हवा जो कुशल बना देती है पूर्णतः या भागतः सहारा पाता है जिसकी सीमाओं के अंतर्गत यान के नीचे की भूमि, जल या अन्य तक आता है : धारा 4 यू० के० होवरक्राफ्ट ऐक्ट, 1968 ।
6. जे टी 1992-2 एस सी 65 ।
7. यू० के० सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 ।
8. जे टी 1992 (2) एस सी 65 ।
9. उपाबंध I/III धारा 8 पर प्रस्तावित नावधिकरण अधिनियम ।
10. धारा 9 ।
11. धारा 9, 11, 12 ।
12. धारा 12(2) (ख) ।
13. धारा 13 ।
14. धारा 19 ।
15. धारा 15 से 18 ।
16. वाणिज्य पोत अधिनियम, 1958 की धारा 3 (15) ।
17. पाद-टिप्पण 9, धारा 20 ।

अध्याय 9

नावधिकरण न्यायालय

9.1. उन न्यायालयों के पदाभिदान का प्रश्न जिनमें नावधिकरण अधिकारिता विहित होगी अत्यंत महत्वपूर्ण प्रश्न है । भारत एक विशाल देश है जिसके समुद्री तट की लम्बाई लगभग 5700 कि०मी० है जो केवल उत्तर को छोड़कर उससे तीनों दिशाओं से सशक्त है । इसमें सर्वदा बहुत सीमा तक सामुद्रिक यातायात तथा व्यापार होता रहा है तथा इसके इतिहास से दर्शित होता है कि आरंभिक काल में अनेक सम्राटों तथा शासकों ने विभिन्न प्रकार के मामले अंतरराष्ट्रीय व्यापार को प्रोत्साहित किया है । हाल के वर्षों में भारत में और उसके बाहर माल यातायात इतना अधिक बढ़ गया है कि इस समय देश में 11 महापत्तन तथा 163 लघुपत्तन हैं । ऐसे विदेशी झंडेवाले (फ्लेग) यानों की संख्या जिन्होंने विगत तीन वर्षों में माल को लदाई या उतराई के लिए भारत के महापत्तनों की यात्रा की इस प्रकार है :—

वर्ष	यानों की संख्या
1990–91	5528
1991–92	5462
1992–93	6129

लघु पत्तनों पर माल की लदाई और उतराई की मात्रा के संबंध में पूरी जानकारी तत्काल उपलब्ध नहीं है । विगत तीन वर्षों के दौरान भारतीय झंडा ले जाने वाले यानों द्वारा ढोए गए समुद्र पारीय व्यापार की कुल टन मात्रा इस प्रकार है :—

वर्ष	कुल व्यापार (दस लाख मीटरी टन में)
1990–91	38.86
1991–92	39.53
1992–93	42.66

ऊपर जो आंकड़े दिए गए हैं वे भारत के पात परिवहन व्यापार की मात्रा के बारे में मोटे आंकडे हैं । हाल के वर्षों में आयात और निर्यात से संबंधित भारतीय विधियों के उदारीकरण से, इसमें संदेह नहीं है कि आगामी वर्षों में इन क्रियाकलापों में अत्यधिक वृद्धि हो जाएगी । भारत और अन्य देशों के बीच यानों के आवागमन यात्रियों की मात्रा और ढोए जाने वाले माल की संख्या में वृद्धि के फलस्वरूप सामुद्रिक दावे, विवाद और मुकदमेबाजी में वृद्धि होना निश्चित है । अतः उन भारतीय न्यायालयों को स्पष्टरूप से परिभाषित करना आवश्यक है जो नावधिकरण और सामुद्रिक मामलों में अधिकारिता का प्रयोग करेंगे ।

9.2. पिछले अध्याय 2 और अध्याय 3 में किए गए विचार विमर्श से यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि इतिहास की विषमता से भारत के स्वतंत्र होने तक तथा उसके पश्चात् उसके सार्वभौम गणतंत्र होने तक सामुद्रिक या नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग केवल मद्रास, मुंबई और कलकत्ता उच्च न्यायालयों द्वारा ही किया जाता रहा है । विभिन्न राज्यों के राज्यक्षेत्रों के पुनर्गठन के आधार पर यह अधिकारिता उन उच्च न्यायालयों में भी निहित हो गई जिन पर राज्यक्षेत्रीय समायोजनों के परिणामस्वरूप उक्त तीन उच्च

न्यायालयों की अधिकारिता विकसित हो गई थी ।[1] उच्चतम न्यायालय द्वारा हाल में **एलिजाबेथ के मामले**[2] में निर्णय से यह स्थिति काफी हद तक हुई है किंतु कुछ ऐसे संदिग्ध मुद्दे हो सकते हैं जिन पर यह संदेह हो कि ऐसे मामले में इनमें किस उच्च न्यायालय को अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए । मुद्दे के इस पहलू पर जिसका स्पष्टीकरण आवश्यक है, ध्यान देने के पहले यह आवश्यक है कि इस बिल्कुल भिन्न सिफारिश पर चर्चा की जाए जो परवीन सिंह समिति की रिपोर्ट में की गई है । जैसा कि पहले बताया गया है कि समिति ने सुझाव दिया है कि नावधिकरण उच्च न्यायालयों से ले ली जानी चाहिए और उसे विशेष रूप से गठित किए गए नावधिकरण न्यायालयों में निहित किया जाना चाहिए तथा उनका एक अपील न्यायालय हो जो उनके विनिश्चयों से अपील सुनने के लिए सशक्त हो । यह एक क्रांतिकारी सुझाव है जो प्रशासनिक अधिकरणों[3] के गठन के हाल के रुख से अनुप्रमाणित है तथा इस पर विचार और इसकी समीक्षा किए जाने की आवश्यकता है ।

9.3. पहले तो यह आवश्यक है कि समिति द्वारा नावधिकरण न्यायालयों के गठन[4] के लिए उसकी सिफारिशों में दिए कारणों का विश्लेषण किया जाए और उनकी समीक्षा की जाए समिति ने जिस स्कीम की परिकल्पना की है वह निम्न आधार पर है :

(1) इस समय नावधिकरण अधिकारिता केवल मद्रास, मुंबई और कलकत्ता के उच्च न्यायालयों में निहित है और इस प्रश्न पर विभाजित राय है कि क्या ये न्यायालय स्वयं नावधिकरण अधिनियमों के स्पष्ट और संरक्षित उपबंधों के अभाव में प्रभावी अधिकारिता का प्रयोग कर सकते हैं।

(2) किसी न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता केवल उस राज्यक्षेत्र तक निर्बंधित नहीं की जा सकती जहां वह न्यायालय अवस्थित है और इसे भारत के संपूर्ण तटीय क्षेत्र और अन्त: समुद्री सीमा तक होना चाहिए क्योंकि सामुद्रिक विवादों के पक्षकार संपूर्ण भारत में फैले हैं ।

(3) नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग और इससे संबंधित विधि का समायोजन एक अन्यन्य विशेषता है और यह आवश्यक है कि विशेषज्ञता के क्षेत्र में पर्याप्त विशिष्टता विकसित की जाए। वर्तमान प्रणाली जिसके अधीन वह न्यायाधीश को जिसमें नावधिकरण अधिकारिता निहित होती है, उच्च न्यायालय के समक्ष अन्य मुकदमों में भी कार्यवाही करनी पड़ती है, अतः उसे इस विषय पर ध्यान के लिए करने इस क्षेत्र में विशेषज्ञता पूर्णज्ञान अर्जित करने के लिए पर्याप्त समय नहीं मिलता है।

(4) नावधिकरण अधिकारिता का अंतरराष्ट्रीय शाखा प्रशाखाएं हैं क्योंकि न्यायालय को अंतर्वलित यान को चाहे वह भारतीय हो या विदेशी गिरफ्तार करने तथा विक्रय करने की शक्तियां हैं । वह न केवल विधि के क्षेत्र में सुविज्ञता की आवश्यक मांग है, वह केन्द्रीय सरकार के लिए आवश्यक बनाती है कि नावधिकरण के स्वतंत्र न्यायालय गठित करे और यह सुनिश्चित करे कि सामुद्रिक दावों को उनके निपटारे में अविभाजित ध्यान मिले । हमारे देश जैसे सामुद्रिक देश ऐसी अप्रचलित विधि पर निर्भर नहीं बना रह सकता । जो हमारी पोत परिवहन उद्योग को वांछित रूप में वृद्धि के रास्ते में अड़ा है ।

(5) समिति के निर्धारण के अनुसार जो उसके सदस्यों के अनुभव पर आधारित है उच्च न्यायालय सामान्यतया किसी वाद के निपटारे में छह वर्ष सेअन्यून समय लेते हैं । समझा जाता है कि सिविल न्यायालयों में तो और विलंब होगा । नावधिकरण न्यायालयों की अधिकारिता का विस्तार करके जैसा कि यू० के० और सिंगापुर में है, भारत नावधिकरण मुकदमेबाजी का केन्द्र हो सकता है तक मूल्यवान विदेशी मुद्रा कमाने वाला हो सकता है जब न्यायालयों में विलंब कम हो जाए ।

(6) गठित किए जाने वाले नावधिकरण न्यायालय किसी रूप में उच्च न्यायालय से अवर नहीं होने चाहिए । इन न्यायालयों में न्यायाधीशों की अर्हताएं, अनुभव और नियुक्ति की पद्धति एकदम संविधान के उपबंधों के अनुरूप होनी चाहिए। उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति के लिए केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण अधिनियम, 1985 का जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने निर्वचन किया है, उपयोग किया जा सकता है ।

(7) परस्पर विरोधी निर्णय से बचाने के लिए इन न्यायालयों में प्रक्रिया संबंधी मामलों को शासित करने वाले नियम केन्द्रीय सरकार द्वारा बनाए जाने चाहिए। मुंबई उच्च न्यायालय के विद्यमान नियमों द्वारा उपबंधित सुरक्षोपाय भी नियम बनाने में समाविष्ट किए जाने चाहिए ।

(8) विभिन्न नावधिकरण न्यायालयों में भिन्न-भिन्न निर्णय से बचने के लिए यह आवश्यक है कि प्रथम बार नावधिकरण न्यायालयों के विनिश्चय से एक एकल नावधिकरण अपील न्यायालय को अपील का उपबंध किया जाए । आगे किसी उच्च न्यायालय को विधि, अधिकारिता या राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय महत्व के विवाद्यकों के प्रश्न पर उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष अपील के लिए मंजूरी के अधीन रहते हुए अपील के उपबंध के सिवाय और किसी अपील या पुनरीक्षण के लिए उपबंध नहीं किया जाना चाहिए ।

(9) केन्द्रीय सरकार को विभिन्न न्यायालय फीस और व्यय का उपबंध करना चाहिए किन्तु ऐसी कोई फीस/व्यय यान के कर्मीदल द्वारा संदेह नहीं होगा ।

9.4. आयोग ने उक्त समिति की सिफारिशों पर सभी पहलुओं से ध्यानपूर्वक विचार किया है और समिति की यह सिफारिश स्वीकार करने में असमर्थ है कि नावधिकरण अधिकारिता को उच्च न्यायालयों से हटा दिया जाए और नावधिकरण न्यायालयों में निहित की जाए । आयोग सिफारिशों में अंतर्वलित साधारण मुद्दों पर पहले अपने व्यापक विचार प्रस्तुत करना चाहेगी और तब समिति द्वारा बताई गए विनिर्दिष्ट बातों पर विचार करेगी।

9.5. यह सत्य है कि भारत के संविधान के परिणामस्वरूप और सामान्यजन को उसको उपलब्ध विद्याधिकार तथा विधिक उपचार के बारे में जागरूकता बढ़ने से देश के न्यायालयों में और विशेष रूप से उच्च न्यायालयों में मुकदमों का अभूतपूर्व विस्फोट हुआ है। इससे तथा इसके साथ उच्च न्यायालयों के बीच राय के बराबर मतभेद के उद्भूत होने वाले परिणाम के विलंब की समस्या से केन्द्रीय सरकार ऐसी संभावना पर विचार करने के लिए प्रेरित हुई कि नागरिक के लिए उसके कष्ट को विशेष रूप से विशेषज्ञता के क्षेत्र में कष्ट दूर करने के लिए अनुकल्पी मंच हो । संविधान के 42वें संशोधन ने संविधान में अनुच्छेद 323 और 323ख को समाविष्ट करते हुए भाग 14क का अधिनियमन करके और प्रशासन के कुछ क्षेत्रों के संबंध में न्यायालयों के स्थान पर राष्ट्रीय या राज्य स्तर के अधिकरणों का गठन प्राधिकृत करके इस विचार को मान्यता प्रदान की ।

यह कहना पर्याप्त है कि इन दोनों उपबंधों में से किसी के अधीन अधिकरण गठित करने वाले विधान की अतिमहत्वपूर्ण विशेषताएं यह हैं—

(क) कि इसमें उच्च अधिकरण की अधिकारिता के भीतर आने वाले किसी या सभी मामलों की बाबत सिवाय अनुच्छेद 136 के अधीन उच्चतम न्यायालय के सभी न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन के लिए उपबंध किया जाएगा।

(ख) कि इसमें अधिकरण की स्थापना के समय सभी मामलों के जो उस समय प्रश्नगत विधि द्वारा अधिकरण को सौंपे गए मामलों के संबंध में न्यायालयों या किसी अन्य प्राधिकारी के समक्ष लंबित हैं ऐसे अधिकरण को अंतरित करने के लिए उपबंध किया जाए ।

परवीन सिंह समिति ने स्पष्टतया सिफारिश करने में सम्पत कुमार के मामले[5] में निश्चित रूप में पूर्वोक्त उपबंधों से प्रेरणा ग्रहण किया था । समिति ने सुझाव दिया था कि नावधिकरण न्यायालयों का सुझाव दिया था न कि नावधिकरण कोई ऐसा विषय नहीं है जिसके बारे में उक्त दोनों में से किसी उपबंध के अधीन अधिकरण गठित किया जा सके।

9.6. इस प्रस्ताव के संबंध में कि नावधिकरण का अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों के अपवर्जन में गठन किया जाए एक महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या यह संविधान के विद्यमान उपबंधों के अधीन अनुज्ञेय है । हमने अनुच्छेद 323 (क) और (ख) का उल्लेख किया है जो समुचित विधान मंडल को उच्च न्यायालयों का अपवर्जन करके विधियां अधिनियमित करने की शक्ति प्रदान करता है । अनुच्छेद 323 (क) और (ख) की गहन संवीक्षा से यह स्पष्ट हो जाएगा कि पूर्वतर उपबंध में कि संघ या किसी राज्य या किसी स्थानीय या किसी अन्य प्राधिकारी के कार्यकलाप के संबंध में लोक सेवा या पदों पर व्यक्तियों की भर्ती और सेवा की शर्तों की बाबत विवाद और शिकायतों के अधिनिर्णय के लिए प्रशासनिक अधिकरणों के गठन के लिए उपबंध है। अनुच्छेद 323 (ख) भी समुचित विधान मंडल को यह शक्ति प्रदान करती है कि वह खंड (2) में विनिर्दिष्ट समीक्षा किसी विषयों की बाबत जो कर के उद्ग्रहण, संग्रहण और प्रवर्तन, विदेशी मुद्रा, सीमाशुल्क सीमांतों के आर-पार आयात और निर्यात, औद्योगिक तथा श्रम विवादों, भूमि सुधारों, नगर संपत्ति की अधिकतम सीमा, संसद् के प्रत्येक सदन या किसी राज्य विधान मंडल के सदन के निर्वाचन, खाद्य पदार्थों तथा अन्य माल के उत्पादन, उपापन और प्रदाय तथा वितरण के संबंध में विवादों, शिकायतों और अपराधों के अधिकरण द्वारा अधिनिर्णय या विचारण के लिए विधि अधिनियमित करे। कल्पना का कितनी ही खींचतान की जाए नावधिकरण अधिकारिता से संबंधित कोई विधि अनुच्छेद 323(ख) के खंड (2) में विनिर्दिष्ट मामलों के अन्तर्गत नहीं आएगी ।

(क) नावधिकरण अधिकारिता की बाबत विधि संविधान की सूची 1 की प्रविष्टि 24, 25 और 95 के अन्तर्गत आती है। इन तीनों प्रविष्टियों में जिसके अन्तर्गत संपूर्ण नावधिकरण विषयक अधिकारिता आती है, विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत विधि अधिनियमित करने की अनन्य अधिकारिता संसद् को है। सूची 1 की प्रविष्टि सं० 24, 25 और 95 में विनिर्दिष्ट विषय अनुसूची 323 (क) या 323(ख) के अधीन नहीं आते। अतः इस निष्कर्ष से कोई बचाव नहीं है कि उच्च न्यायालयों का अपवर्जन करके नावधिकरण संबंधी विषयों के अधिनिर्णय के लिए किसी अधिकरण का गठन नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त यह व्यापक धारणा है कि उच्च न्यायालयों के स्थान पर अधिकरण अच्छे नहीं हो सकते। उच्चतम न्यायालय के आर० के० जैन[8] के मामले में कुछ संप्रेक्षण और न्यायमूर्ति श्री अहमदी द्वारा हाल में अहमदाबाद आय-कर बार एसोसिएशन[9] में दिए गए भाषण में किए गए संप्रेक्षण से ऐसी धारणा अभिव्यक्त होती है। हाल ही में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय[9क] ने भी यह उल्लेख किया है कि अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन उच्च न्यायालयों में निहित न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति संविधान का बुनियादी ढांचा है जो संविधान के संशोधन द्वारा भी नहीं लिया जा सकता। उच्च न्यायालय ने उस मामले को एक रिट याचिका को ग्रहण किया और प्रशासनिक अधिकरण के आदेशों में हस्तक्षेप किया। एक विशेष इजाजत अर्जी उच्चतम न्यायालय में फाइल की गई और मामला संपूर्ण विवाद्यक पर विचार करने के लिए एक बड़ी न्यायपीठ को निर्देशित किया गया है। इन बातों से यह उपदर्शित नहीं होता कि नावधिकरण विषयक न्यायालयों या अधिकरणों में आदेशों के विरुद्ध उच्च न्यायालयों को न्यायिक पुनर्विलोकन की शक्ति न दी जाए जैसा कि परवीन सिंह समिति ने सुझाव दिया है, न तो उचित होगा न वांछनीय होगा ।

(ख) नावधिकरण अधिकरणों के बजाए नावधिकरण न्यायालयों के गठन के सुझाव से भी स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन सभी न्यायालय और अधिकरण उच्च न्यायालयों की पर्यवेक्षण अधिकारिता के अधीन हैं

और उनके आदेशों की उच्च न्यायालयों द्वारा न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन होते हैं। इस प्रकार यदि नावधिकरण न्यायालय गठित कर दिए जाते हैं तो भी उनके आदेश उच्च न्यायालयों के न्यायिक पुनर्विलोकन के अधीन होंगे।

(ग) किसी सांविधानिक उपबंध के अभाव में, संसद् को अथवा राज्य विधान मंडल को उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को अपवर्जित करने वाली विधि अधिनियमित करने की विधायी क्षमता नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया है कि नावधिकरण संबंधी अधिकारिता, इसके उद्भव और विकास की विशिष्टता के बावजूद उच्च न्यायालय में अभिलेख के वरिष्ठ न्यायालय के रूप में निहित है। उच्च न्यायालय संविधान के अधीन असीमित अधिकारिता और सभी न्यायिक शक्तियों का केवल उन्हें छोड़कर जो अपवर्जित हैं निधान है, और वह नावधिकरण मामलों में कार्यवाही करने में सक्षम है। संविधान विधान मंडल पर उच्च न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता में कमी करने की शक्ति प्रदान नहीं करता अतः परवीन सिंह समिति की उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के अपवर्जन के लिए सिफारिश स्वीकार नहीं की जा सकती।

9.7. किंतु हम इसे चाहे न्यायालय कहें या अधिकरण कहें ऐसे निकाय को केवल अकाट्य कारणों से उच्च न्यायालय की विद्यमान अधिकारिता को प्रतिस्थापित करने के लिए अनज्ञात किया जा सकता है। वह मुख्य कारण कि क्यों विद्यमान न्यायालयों के स्थान पर अधिकरण बनाने का विचार पैदा हुआ यह है कि वे एक विशेषज्ञ निकाय उपलब्ध कराते हैं जो मामलों का शीघ्र निपटारा सुनिश्चित करते हुए विशेष विशेषज्ञता के प्रति आकर्षण प्रस्तावित करता है। यदि अधिकरण कराधान के क्षेत्र में बेहतर माना जाता है तो यह इस कारण से कि यह ऐसा अधिकरण जिसमें न्यायिक सदस्य और लेखाकार या तकनीकी सदस्य से गठित करना संभव है। इसमें से पूर्वतर को उच्च अधीनस्थ न्यायपालिका, वकीलों की वृत्ति और केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार की विधिक सेवाओं से किए जाते हैं जब कि पश्चात्वर्ती सदस्य लेखाकारों की वृत्ति से अथवा सुसंगत सरकारी विभागों से लिए जाते हैं। इस सम्मिश्रण से कर विधियों की विशेष जानकारी और ज्ञात तथा विशेषज्ञता वाला निकाय बनाना संभव हो जाता है। इसी प्रकार, प्रशासनिक अधिकरण में न्यायिक सदस्य न्यायाधीश, विधि व्यवसायी और विधिक व्यक्ति होते हैं जब कि प्रशासनिक सदस्य सेवा की उच्चतर पंक्ति से किए जाते हैं जिनसे यह आशा की जाती है कि उन्होंने सेवा नियमों और सेवा न्यायशास्त्र के प्रशासन में उन्हें प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव है। यद्यपि इन परीक्षणों को भी सार्वभौम मान्यता नहीं मिली है और दृढ़ राय यह भी है कि ऐसे मामलों में न्यायालयों की अधिकारिता वापस न की जाए। दुर्भाग्यवश, नावधिकरण विषयों के क्षेत्र में ऐसी कोई विशेषज्ञता प्राप्त निकाय नहीं है जिसके बारे में सोचा जा सके। कोई विचार कर सकता है कि इस क्षेत्र में विशेषज्ञ वकील अत्यल्प हैं और यह संभाव्यता नहीं है कि वे इस प्रकार की सेवा स्वीकार कर। वास्तव में अन्य अधिकरणों के मामलों में भी यह पाया जाता है कि विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों की प्रतिक्रिया अत्यंत अनुत्साह दर्शाने वाली है। अन्य कोई सेवा नहीं है जो इन न्यायालयों में कार्य करने के लिए इस क्षेत्र में विशेष ज्ञान या अनुभव रखने वाले व्यक्ति दे सके। वास्तव में परवीन सिंह समिति ने भी केवल सुझाव दिया था कि नावधिकरण न्यायालय उसी प्रकार गठित किए जाएं जैसे उच्च न्यायालय किए जाते हैं। स्थिति की अपेक्षानुसार विधि की इस शाखा में विधि व्यवसाय करने वाले वकीलों की भर्ती यथासंभव उच्च न्यायालय की न्यायपीठों में की जाए न कि अनेक नावधिकरण न्यायालय स्थापित करने के लिए ऐसे कार्मिकों की खोज में लगा जाए। केवल नाम परिवर्तन को छोड़कर स्थिति में कोई वास्तविक सुधार नहीं होगा।

9.8. इसके अतिरिक्त विशेषज्ञ निकाय सुनिश्चित करने की आवश्यकता के जो ऐसी अपेक्षा है जैसा हमने ऊपर बताया है, जिसके यहां पूरी होने की संभाव्यता नहीं है, न्यायालयों (उच्च न्यायालयों) से मुकदमों की किसी विशेष शाखा को विनिच्छिन्न करने के

लिए सोचा गया औचित्य यह है कि उच्च न्यायालयों में अत्यधिक मामले लंबित हैं और उनके समक्ष नियमित तथा सामान्य मुकदमों के निपटारे में उनकी ओर से विलंब होता है। आयोग की राय है कि ऐसा कोई आधार विद्यमान है इस पर विचार करने के लिए कोई आंकड़ा उपलब्ध नहीं कराया गया है। समिति ने जिन आंकड़ों[11] का उल्लेख किया है वे अपूर्ण हैं और वे केवल एक उच्च न्यायालय अर्थात् मुंबई उच्च न्यायालय[12] की स्थिति के प्रति निर्देश करते हैं। ये आंकड़े[13] कुल लंबित मामलों से तुलना करने पर इतने अमहत्वपूर्ण हो जाते हैं कि उनसे अति गंभीर आशंका पैदा नहीं होती जिससे उच्च न्यायालयों से अधिकारिता ले लेने का औचित्य हो। विलंब के प्रश्न पर हमें यह तथ्य ध्यान में रखना होगा कि सामुद्रिक मामलों में कुछ विलंब इस तथ्य की दृष्टि से अपरिहार्य है एक मुकदमें में हितबद्ध कई पक्षकार हों और अकसर विदेशी राष्ट्रिकों और कंपनियों को आदेशिका की तामील अपेक्षित होती है जो समय लेने वाली प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त समिति ने अपनी स्कीम के अधीन एक अपील न्यायालय का अधिकार रूप में सुझाव दिया है और यह शीघ्र निपटारे में सहायक नहीं होगा। सत्य यही प्रतीत होता है कि अभी तक नावधिकरण मामलों के शीघ्र निपटारे के मार्ग और साधन की युक्ति निकालने के लिए कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। इस प्रकार के मुकदमों के निपटारे पर विशेष प्रयास से मामलों में शीघ्रता होगी और यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि विद्यमान कठिनाइयों पर विजय नहीं मिल सकती। वास्तव में समिति का यह सुझाव कि भारत में चार नावधिकरण न्यायालय[14] पर्याप्त होंगे, स्पष्ट कारण देता है कि विधि के इस क्षेत्र में में मात्रा और विलंब की समस्या कोई बहुत गंभीर नहीं है।

9.9. यह सत्य है कि विधि की कुछ शाखाओं में विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच न्यायिक राय में मतभेद विधि के शीघ्र निपटारे के रास्ते में रोड़े अटकाते हैं और एक एकल न्याय का सृजन मतभेदों को दूर करने तथा बड़ी न्यायपीठ सृजन स्वयं उनका पता लगाने में सहायक हो सकती है। किन्तु यह आलोचना मूल आशंका पर आधारित हो सकती है। हमारे संविधान में न्याय प्रदान करने की जो प्रणाली है वह न्यायालयों के बीच परस्पर विरोधी राय होना निश्चित है और इससे बचा नहीं जा सकता। भारत एक विशाल देश है उसमें अनेक राज्य हैं तथा एक तथा एक ही विधि तथा भिन्न-भिन्न विधि का संचालन करने वाले अठारह उच्च न्यायालय है, उनमें विभिन्न विषयों पर भिन्न-भिन्न विचार होना निश्चित है। यह संघीय संरचना में निहित होता है और विनिश्चयों में विभिन्नता को एकदम समाप्त करने का कोई रास्ता नहीं है। बल्कि हमारा विचार है कि विनिश्चयों की भिन्नता कुछ समय वांछनीय होती है क्योंकि उस प्रक्रिया से विधि का विकास हुआ है और वह समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए अग्रसर हुई है तथा यह विशेष रूप से नावधिकरण संबंधी अधिकारिता के मामले में भी होगी जिसे हमारे देश में अभी विकसित होना है। इसके अतिरिक्त आयोग ऐसा नहीं सोचता कि इस समस्या ने नावधिकरण मामलों में ऐसा कोई आयाम प्राप्त कर लिया है। यह तथ्य कि भारत शासन अधिनियम, 1935 के पश्चात् 57 वर्ष व्यतीत होने पर भी कोई ऐसा मतभेद उत्पन्न हुआ प्रतीत नहीं होता है जो फेडरल न्यायालय या उच्चतम न्यायालय तक ले जाने योग्य पाया जाता इससे प्रतीत होता है कि आशंका व्यावहारिक नहीं सैद्धांतिक है। यह हो सकता है कि समय व्यतीत होने पर लंबित मामलों की संख्या और राय में परस्पर विरोध की समस्याएं अधिक बढ़ जाएं और उनको सुलझाने के लिए समुचित उपाय करने पड़ें। आयोग का विचार है कि कम से कम इस समय ये इतने बड़े आकार की नहीं हो गई है कि इन मामलों में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता छीन ली जाए।

9.10. इसके विपरीत ऐसे महत्वपूर्ण कारण है कि क्यों उच्च न्यायालय की अधिकारिता बनाए रखी जाए। प्रथम यह ऐसा क्षेत्र है जिसमें पिछली दशाब्दी में भी यह आवश्यक समझा गया कि इनकी अधिकारिता केवल उच्च न्यायालयों[15] में ही निहित की जाए। दूसरा अभी इस क्षेत्र में न्यायशास्त्र विकसित किया जाना है, अन्य देशों की निर्णयन विधियों, सागर की रूढ़िजन्य प्रथा तथा अंतरराष्ट्रीय अभिसमय का, जो इस समय प्रचलित[16]

विधि का बल रखते है, निर्वचन किए जाने की आवश्यकता है और इस उद्देश्य को प्राप्त करने में उच्च न्यायालय की प्राथमिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता । तीसरे इस क्षेत्र में न्यायालय अधिकारिता की भुजाएं लंबी और सशक्त हैं। यह विश्व के विभिन्न भागों के राष्ट्रिकों को गिरफ्तार और संपत्ति को अवरुद्ध कुर्क और विक्रय कर सकती है । जैसा समिति ने उल्लेख किया है यह अंतरराष्ट्रीय प्रकृति का है और इसके बारे में एक सुस्थापित न्यायिक निकाय द्वारा कार्यवाही की जानी चाहिए जिसकी देश के संविधान में तथा विदेशी राष्ट्रिकों की दृष्टि में भी प्रास्थिति हो वास्तव में नावधिकरण मामलों में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता बनाए रखने के पक्ष में परमोच्च विचारणीय बात ।

9.11. इस समय नावधिकरण मामलोंमें मामले के विल्त रहने का एक अन्य पहलू भी है जिस पर विचार किया जाना आवश्यक है । यह पहले उल्लेख किया जा चुका है कि मुंबई उच्च न्यायालय में लंबित मामलों की संख्या से भयभीत होने का कोई कारण नहीं है । इसके अतिरिक्त इन बातों के प्रभाव को कम करने का एक सरल मार्ग है । इस समय केवल कुछ उच्च न्यायालय ही नावधिकरण मामलों में अधिकारिता का प्रयोग करते हैं । जैसा कि समिति ने स्वयं उल्लेख किया है कि न्यायालयों की नावधिकरण विषयक अधिकारिता केवल उस राज्यक्षेत्र तक निर्बंधित नहीं की जानी चाहिए । जहां यह अवस्थित है किन्तु इसे भारत के संपूर्ण समुद्री तट तथा आंतरिक समुद्र तक विस्तृत किया जाना चाहिए । उसके आधार पर कि नावधिकरण विषयक अधिकारिता भारत के ऐसे सभी उच्च न्यायालयों में जो मूल अधिकारिता रखते हैं, निहित की जानी है और यह कि अधिकारिता उस राज्य-क्षेत्र तक निर्बंधित नहीं है जहां उच्च न्यायालय अवस्थित है, एक उपबंध उच्चतम न्यायालय को इस बात में समर्थ बनाने के लिए जोड़ा जाना चाहिए कि उच्चतम न्यायालय स्वप्रेरणा से या आवेदन किए जाने पर देश के एक उच्च न्यायालय से नावधिकरण वाद को ऐसे कारणों के आधार पर जैसा वह पक्षकारों को सुनने के पश्चात् उचित समझे अंतरित कर सकेगा । तीन उच्च न्यायालयों में विद्यमान मुकदमों को ही सभी भारतीय उच्च न्यायालयों में वितरित किए जा सकते हैं और उन्हें उससे इस समय से अधिक तीव्रता से निपटाया जा सकता है ।

9.12. ऊपर की गई चर्चा में परवीन सिंह समिति में बचे मुद्दों पर पहले कार्य-वाही की जा चुकी है और हम यह नहीं समझते हैं कि उस पर प्रत्येक मुद्दे के प्रति निर्देश से पृथक् रूप से विचार-विमर्श करने की आवश्यकता है अतः आयोग की राय है कि नावधिकरण अधिकारिता सभी उच्च न्यायालयों को जारी रखा जाना चाहिए ।

9.13. उच्च न्यायालय विषयक अधिकारिता में कार्यवाही करेंगे जैसे कि कंपनी और वसीयती तथा अन्य मामलों में मूल पक्ष में करते हैं । सामान्यतः कंपनी और वसीयती मामलों में मूल अधिकारिता का प्रयोग उच्च न्यायालय के एकक न्यायाधीश द्वारा किया जाता है और उसके आदेश और निर्णय से अपील न्यायालय की खंड न्यायपीठ को की जाती है। यह नावधिकरण विषयक मामलों में भी सही स्थिति होनी चाहिए इससे परवीन सिंह समिति द्वारा बताए गए अपील मंच होने की आवश्यकता की पूर्ति हो जाएगी ।

9.14. परवीन सिंह समिति ने एक आशंका व्यक्त की है कि शायद उच्च न्यायालयों में मामलों की अधिकता के कारण वह नावधिकरण मामलों में शीघ्रता से कार्यवाही करने में समर्थ न हो । जैसी कि पहले चर्चा की गई है निःसंदेह उच्च न्यायालयों में मुकदमों का कुछ विस्फोट हो रहा है और मामलों के निपटारे में विलंब हो रहा है परन्तु केवल इसी आधार पर उच्च न्यायालयों को कम से कम इस समय नावधिकरण विषयक अधि-कारिता से विशेष रूप से इस अधिकारिता में बकाया मामलों के संबंध में पूरे आंकड़े के अभाव में वंचित करने का औचित्य नहीं है अतः समिति की राय है कि इस समय उच्च न्यायालयों को अनन्य रूप से नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करते रहना चाहिए यदि बाद में यह पता चलता है कि कार्य की मात्रा अत्यंत अधिक है कि उच्च न्यायालय कार्य

पूरा करने में असमर्थ नहीं है तो केंद्रीय सरकार भारत के मुख्य न्यायमूर्ति और संबंधित उच्च न्यायालय से परामर्श करके सुसंगत जिला के प्रधान सिविल न्यायालय को ऐसी नाव-धिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए सशक्त करने के लिए कदम उठा सकेगी जैसी उस समय अभिभावी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए आवश्यक समझी जाएं । ऐसी किसी दशा में नावधिकरण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध तथ्यों और विधि दोनों पर अपील उच्च न्यायालय में की जा सकेगी । किंतु इस समय हम इस राय पर दृढ़ हैं कि उच्च न्यायालय को अनन्य रूप से नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग करना चाहिए । प्रस्तावित प्रारूप विधान में उपर्युक्त आधार पर आवश्यक उपबंध किए गए हैं।

9.15. अभी तक हम सिविल मामलों में नावधिकरण विषयक अधिकारिता पर चर्चा कर रहे थे । नावधिकरण अपराधों में दांडिक अधिकारिता विभिन्न बातों द्वारा शासित होती है । भारतीय दंड संहिता[17] की धारा 4 भारत में किसी सामान्य न्यायालय को उसकी सामान्य अधिकारिता में किसी भारतीय नागरिक द्वारा भारत के भीतर या बाहर किसी स्थान पर किए गए अपराध का विचारण करना संभव बनाती है । यह भारत में रजिस्ट्रीकृत किसी पोत या वायुयान पर किए गए किसी अपराध के लिए किसी व्यक्ति का अपराध के समय वायुयान की अवस्थिति चाहे कुछ भी हो, भारत में अभियोजन और विचारण भी प्राधिकृत करती है । यह अधिकारिता इस सिद्धांत पर आधारित है कि भारत में रजिस्ट्री-कृत पोत विधि में भारतीय राज्यक्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाला तैरता हुआ द्वीप है । इस सामान्य अधिकारिता के अतिरिक्त कुछ कानून भी "नावधिकरण अपराधों" के संबंध में भारतीय न्यायालयों को अधिकारिता प्रदान करते हैं। ऐडमिरेल्टी आफेंसेज (कोलोनियल) ऐक्ट, 1949[18] को जो ब्रिटिश उपनिवेशों में समुद्र पर या जलमार्गों पर जहां ऐडमिरल को अधिकारिता है, किए गए अपराधों के विचार में अधिकारियों और न्यायालयों को समर्थ बनाता है, भारत को जैसे वह उस समय था ऐडमिरेल्टी ज्युरिस्डिक्शन (इंडिया) ऐक्ट, 1869 द्वारा इस परंतुक के साथ लागू किया गया था कि भारत में या भारत में लाया गया इन अपराधों का अभियुक्त कोई व्यक्ति यह दावा कर सकता है कि उसका विचारण प्रश्नगत प्रेसिडेंसी के सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही किया जाए। यह उपबंध भारत में प्रचलित बना रहा ।

9.16. ऐसा प्रतीत होता है कि यूनाइटेड किंगडम का मर्चेंट शिपिंग ऐक्ट, 1894 ने भी ऐसे अपराधों को इंग्लैंड तथा भारत में सामान्य दांडिक न्यायालयों द्वारा विचारणीय बनाया । उक्त अधिनियम की धारा 684 से 687 इस संबंध में सुसंगत हैं। किन्तु यहां उनके विस्तार से परिवर्णित करने की आवश्यकता नहीं है । क्योंकि अब मर्चेंट शिपिंग ऐक्ट, 1958[21] द्वारा निरसित कर दिया गया है। इस अधिनियमित में अधिनियम[22] के अधीन अपराधों से संबंधित कई उपबंध हैं किन्तु उनमें से कोई पूर्वकथित ब्रिटिश ऐक्ट की धारा 684 से 687 के तत्स्थानी नहीं हैं ।

9.17. यह स्पष्ट है कि ऐडमिरेल्टी आफेंसेज (कोलोनियल) ऐक्ट, 1949 और ऐडमिरेल्टी ज्युरिस्डिक्शन (इंडिया) ऐक्ट, 1860 का लागू होना निरसित कर दिया जाना चाहिए । उन विधानों को उस समय अधिनियमित किया गया था जब भारत ब्रिटिश कब्जे में था । उनका भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् तथा भारत के गणतंत्रात्मक संविधान के पश्चात् भी लागू बने रहना भारत की प्रभुसत्ता के लिए असम्मानजनक है । अतः इन दोनों अधिनियमों को तत्काल प्रभाव से निरसित किया जाना है ।

9.18. तथापि यह प्रश्न बार-बार उठता है कि क्या हमें भारत में या भारत की राज्यक्षेत्रीय अधिकारिता से परे किसी स्थान में अपराध के दोषी व्यक्तियों की गिरफ्तारी, अभियोजन, विचारण और दंडादेश को सुकर बनाने के लिए ऐसे कुछ उपबंधों को अधिनियमित करना चाहिए जो उपर्युक्त अधिनियमों के तत्स्थानी हों । हमने इस प्रश्न पर विचार किया है और हमारी राय है कि उपरोक्त उपबंधों को अधिनियमित करना आवश्यक है क्योंकि

उनमें जिन स्थितियों की बात सोची गई है वे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 3 और 4 के उपबंधों के अंतर्गत आ जाती हैं। इस प्रकार यह होगा कि सिविल नावधिकरण के मामलों के बारे में जब तक ऐसे मामलों के बारे में कार्यवाही करने के लिए अन्य न्यायालयों को समर्थ बनाने वाले उपबंध नहीं बनाए जाते हैं तब तक अनन्य रूप से उच्च न्यायालयों द्वारा कार्यवाही की जाएगी किन्तु खुला समुद्र और मध्य उस क्षेत्र में किए गए दांडिक अपराधों पर देश की सामान्य विधि के अधीन कार्यवाही की जाएगी।

पाद टिप्पण — अध्याय 9

1. इसमें स्पष्टत: आंध्र प्रदेश, उड़ीसा, गुजरात और केरल के तथा कुछ अन्य उच्च न्यायालय भी शामिल होंगे।
2. एलिजाबेथ का मामला, जे टी 1992 (2) एस सी पृ० 65।
3. संविधान का अनुच्छेद 323 क और ख देखिए। केन्द्रीय प्रशासनिक अधिकरण और राष्ट्रीय कर अधिकरण, जिसके गठन का प्रस्ताव विचाराधीन है, इस रुझान के उदाहरण हैं।
4. ऐसे न्यायालयों के गठन के लिए प्रारूप विधान भी समिति द्वारा तैयार किया गया है जो इस रिपोर्ट के साथ भी संलग्न है।
5. सम्पत कुमार का मामला, ए आई आर एस सी 386।
6. ए आई आर 1987 एस सी 386।
7. यह पता लगेगा कि समिति ने कोई विभेद मन में नहीं रखा था।
8. (1993) 4 एस सी सी 119।
9. जे टी 1994 (2) जनरल सेक्शन।

9क. एल हरिनाथ बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, 1993 (3) आंध्र एल टी 471।

10. जे टी 1994 (2) जनरल सेक्शन।
11. उसकी रिपोर्ट के पैरा 13 में।
12. समिति का कथन है कि "वाणिज्यिक विधि के अधीन विभिन्न सिविल न्यायालयों में फाइल किए गए वादों की संख्या काफी अधिक है", किन्तु, इस समय केवल तीन उच्च न्यायालयों में ही नावधिकरण विषयक अधिकारिता निहित होने के कारण यह स्पष्ट नहीं है कि यहां समिति क्या निर्दिष्ट करती है।
13. संख्या और रकम, दोनों निर्दिष्ट हैं। खेद है कि और भी नवीनतम आंकड़े अद्यतन: उपलब्ध नहीं हैं।
14. रिपोर्ट का पैरा 16।
15. आरंभ में ऐसा रहा होगा क्योंकि पोत और पोतों के स्वामी यू के के ही थे और वे अपने हितों की रक्षा करना चाहते थे। किन्तु, वैकल्पिक विचार से यह महसूस होगा कि यह भी बोधगम्य है।
16. उदाहरणार्थ, पहले उद्धृत 19 जे टी 1992 (2) एस सी 65 के पृष्ठ 105 पर कोट्टूथायन जस्टिस के संप्रेक्षण देखिए।
17. भारतीय दंड संहिता (1860 का अधिनियम सं० 45), धारा 4।
18. नावधिकरण अपराध (औपनिवेशिक) अधिनियम, 1849 (12 और 13 विक्टोरिया, सी 96)।
19. नावधिकरण अधिकारिता (भारत) अधिनियम, 1860 (23 और 24 विक्टोरिया, सी 88) धारा।
20. वही धारा 2।
21. वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958, धारा 451 (2) और उसकी अनुसूची का भाग 2।
22. वही धारा 436।

अध्याय 10

निष्कर्ष और सिफारिशें

10.1. किसी राज्य में न्यायालयों की अधिकारिता, राष्ट्र के रूप में राज्य की स्वतंत्र संप्रभुशक्ति का प्रकटीकरण है। राष्ट्र की अधिकारिता उसके अपने राज्यक्षेत्र के भीतर अनिवार्य रूप से अनन्य और आत्यंतिक है। यह असीमित, सुग्राह्य है जब तक कि राज्य द्वारा स्वयं ही सीमा अधिरोपित न की जाए। इसीलिए, नावधिकरण अधिकारिता, न्यायिक संप्रभुता का एक अनिवार्य पक्ष है जिसका संविधान और विधियों के अधीन उच्च न्यायालय द्वारा उसकी अधिकारिता के भीतर व्यक्तियों और वस्तुओं के संबंध में न्याय प्रशासन के लिए ज्येष्ठ अभिलेख न्यायालय के रूप में प्रयोग किया जाता है। विदेशी पोतों के विरुद्ध दावों के प्रवर्तन की शक्ति, नावधिकरण अधिकारिता का आवश्यक संघटक है और इसकी ऐसे पोतों पर जब वे गिरफ्तार करने और निरुद्ध करने वाले उच्च न्यायालय की अधिकारिता के भीतर हैं, उपधारणा होती है।

10.2. उच्चतम न्यायालय ने हाल में यह उपदर्शित किया है कि[1] किसी राज्य के जलक्षेत्र के भीतर सभी व्यक्ति और वस्तुएं जब तक कि विनिर्दिष्टत: अंतर्राष्ट्रीय विधि[2] के नियमों द्वारा घटाई या विनियमित न की जाए, उस राज्य की अधिकारिता के भीतर है। किसी विदेशी जलयान को, जब वह तटवर्ती राज्य के जलक्षेत्र में है, गिरफ्तार करने की शक्ति, सामुद्रिक मामले की बाबत जब कभी वह उत्पन्न होता है, एक प्रभाव्य अभिव्यक्ति है और राज्यक्षेत्रीय संप्रभुता का आवश्यक संघटक है। यह शक्ति अनेक अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों द्वारा मान्यताप्राप्त है। इन अभिसमयों में विभिन्न विधिक प्रणालियों से ली गई विधि के एक रूप नियम अंतर्विष्ट हैं। यद्यपि, उनमें से अनेक अभिसमयों का अभी भी भारत द्वारा अनुसमर्थन किया जाना है, फिर भी उनमें सामुद्रिक राज्यों की बहुतायत द्वारा मान्य विधि के सिद्धांत शामिल हैं और इसीलिए उसे हमारी सामान्य विधि के भाग के रूप में माना जा सकता है। इन अभिसमयों के अनुसमर्थन का अभाव स्पष्टत: किसी नीति की असहमति के कारण नहीं है जैसा कि अभिसमयों द्वारा अपनाए गए नियमों के सूत्रीकरण में, सक्रिय और सफल भारतीय भागीदारी से स्पष्ट है, किन्तु संभवत: अन्य परिस्थितियों जैसे कि सरकार के संबद्ध विभागों के समन्वयन द्वारा विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय अभिसमयों के कार्यान्वयन के लिए समुचित और विशेषित तंत्र का अभाव, के कारण है। विधिक और तकनीकी विशेषज्ञों का ऐसा कोई विशेषित निकाय, राष्ट्रीय विधान द्वारा अंतरराष्ट्रीय रूप से एक रूप नियमों का अंगीकरण सुकर बना सकता है। यह ठीक होगा कि संबद्ध प्राधिकारियों द्वारा विषय के इस पहलू पर पर्याप्त ध्यान दिया जाए। संभवत: पर्याप्त प्राधिकार, प्रास्थिति और स्वातंत्र्य से संपन्न भारत का विधि आयोग, जैसा कि उसे होना चाहिए, इस संबंध में मूल्यवान सहायता प्रदान कर सकता है। अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों के, जो व्यापार को सुकर बनाने के लिए आशयित हैं, अंगीकरण में विलंब, राष्ट्र की आर्थिक वृद्धि में बाधा डालती है।[3]

10.3. आयोग ने, इस रिपोर्ट में, पहले उन विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों/नयाचारों और करारों पर विस्तृत रूप में चर्चा की है जिसमें भारतीय सरकार एक पक्षकार रही है और वह सीमा भी उपदर्शित की है जिस तक हमारे देश ने इन अभिसमयों, नयाचारों और करारों को कार्यान्वित किया है। इसमें वे प्रक्रम भी उपदर्शित किए गए हैं जिन पर इन विभिन्न नयाचारों और अभिसमयों में से हर एक का कार्यान्वयन का मुद्दा है। पूर्वतर उद्धृत उच्चतम न्यायालय के संप्रेक्षण के आलोक में इस निमित्त अब जो भी किया जाना है, वह है स्थिति के पुनर्विलोकन की त्वरित कार्रवाई और आगे विलंब किए बिना अभिसमयों, करारों और नयाचारों के

कार्यान्वयन में शीघ्रता। उच्चतम न्यायालय ने विभिन्न अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों के कार्यान्वयन के लिए समुचित विशेषित तंत्र की कमी पर टिप्पणी की है। इन अभिसमयों की तारीखों और पहले निर्दिष्ट कार्यान्वयन के प्रक्रम के अनुशीलन से पता चलेगा कि सरकार ने इन विषयों में अनुवर्ती कार्रवाई को पर्याप्त अधिमान नहीं दिया है। हमें उस निस्पृहता और उदासीनता से अत्यधिक चिन्ता है जो इस निमित्त सरकार की कार्रवाइयों की विशेषता बन गई है तथा विनिश्चय करने की प्रक्रिया, अधिकारिता संबंधी विलम्बों और उलझनों में जकड़ गई है। हमने इस निमित्त अपने प्रत्यक्ष योगदान की संभावनाओं पर विचार किया है तथापि, हम इसी निश्चय पर पहुंचे हैं कि अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों का अनुसमर्थन (या अन्यथा) प्राथमिक रूप से राज्य की नीति का विषय होगा और इस मुद्दे पर विनिश्चय अन्य देशों के दृष्टिकोण की बाबत अद्यतन जानकारी, उन प्रक्रियात्मक और अन्य कठिनाइयों, जो देश और व्यापार के सामने आ सकती है और तकनीकी डाटा के मूल्यांकन पर निर्भर करेगा, अतः स्वयं आयोग के लिए यह प्रयास करना शक्य या व्यवहार्य नहीं होगा। अतः हम यह सिफारिश करेंगे कि यह कार्य आरंभ करने के लिए सरकार को तत्काल एक पुनर्विलोकन समिति का गठन करना चाहिए। समिति में गृह मंत्रालय, विदेश मंत्रालय के विधि और संधि विभाग, जलभूतल परिवहन मंत्रालय और विधि मंत्रालय के विधि कार्य विभाग के अपर सचिव और प्रास्थिति के अधिकारी होने चाहिए। समिति विस्तृत रूप में, उन अनेक अभिसमयों/नयाचारों और करारों में प्रत्येक की जिन्हें भारत द्वारा अनुसमर्थित किया गया है किन्तु अभी कार्यान्वित किया जाना शेष है, विलंब के लिए कारणों की जांच कर सकेगी और यह सुनिश्चित करेगी कि और विलंब किए बिना इन अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों को कार्यान्वित करने के लिए शीघ्र कार्रवाई की जाए। समिति उन अन्य नयाचारों और अभिसमयों की बाबत नवीनतम स्थिति का भी पुनर्विलोकन कर सकेगी जो अन्य देशों द्वारा अपनाए गए हैं और अंतरराष्ट्रीय रूप से प्रवर्तन में हैं और जिन्हें भारतीय सरकार द्वारा निकट भविष्य में उनके अनुसमर्थन या अन्यथा के लिए सिफारिशें करेगी।

10.4. पहले इस बात की ओर संकेत किया जा चुका है कि नावधिकरण अधिकारिता, अपने उद्भव और विकास की विलक्षणताओं के बावजूद वरिष्ठतम अभिलेख न्यायालय के रूप में उच्च न्यायालय में निहित अधिकारिता की समग्रता का एक भाग है और यह एक विशिष्ट और पृथक् अधिकारिता नहीं है जैसी कि एक समय न्यायालयों के एकीकरण के पूर्व इंगलैंड में स्थिति थी। 1890 और 1891 के अधिनियमों में विनिर्दिष्ट रूप से भारतीय उच्च न्यायालयों पर नावधिकरण अधिकारिता, उनके असीमित अधिकारिता वाले न्यायालय होने के कारण प्रदान की थी। इन अधिनियमों ने किसी पृथक् या विशिष्ट और पृथक् अधिकारिता का सृजन नहीं किया था अपितु, भारतीय उच्च न्यायालयों की अधिकारिता के भीतर नावधिकरण शक्तियों के प्रयोग के लिए उनको मात्र इंगलिश हाईकोर्ट (जो उस न्यायालय के रूप में 1875 से एकीकृत और समेकित किया गया है) की स्थिति के तुल्य किया था। पहले निर्देशित उच्च न्यायालयों के कुछ विनिश्चयों में अभिव्यक्त विरोधी विचार स्पष्टतः गलत था। हमने इस बात का भी उल्लेख किया है कि नावधिकरण विषयों में उच्च न्यायालयों की अधिकारिता को वापस लेना और उसे परवीन सिंह समिति की सिफारिश के अनुसार उस प्रयोजन के लिए गठित पृथक् न्यायालयों में विहित करना अनुज्ञेय या वांछनीय नहीं है। जैसा कि यह प्रस्तावित है कि नावधिकरण अधिकारिता का विस्तार देश में सभी नाव्यजल पर होना चाहिए, अतः केवल उन उच्च न्यायालयों तक ही, जिनके क्षेत्रों में तटीय पट्टी है, सीमित करना आवश्यक नहीं है। इसीलिए, यह सिफारिश की जाती है कि सभी भारतीय उच्च न्यायालयों में नावधिकरण अधिकारिता, उनकी मूल अधिकारिता के भाग रूप में इस उपबंध के साथ बनी रहनी चाहिए कि यदि भविष्य में आवश्यकता उत्पन्न हो तो उस दशा में इस अधिकारिता का विस्तार अन्य प्रधान सिविल न्यायालयों पर करने की शक्ति हो। इस सिफारिश पर अध्याय 9 में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

10.5. आयोग ने इस बात की ओर पहले ही संकेत किया है कि यदि एक बार कोई विदेशी पोत, भारतीय जल में, उच्च न्यायाल के परिनियम द्वारा उसमें विहित या अभिलेख न्यायालय के रूप में उसमें अंतर्विहित किसी वाणिज्यिक दावे की बाबत उसके स्वामी के

विरुद्ध, वाद हेतुक चाहे कहीं भी उत्पन्न हुआ हो, नावधिकरण अधिकारिता के प्रयोग में, आदेश द्वारा गिरफ्तार किया जाता है और चाहे वह पोत तत्पश्चात् स्वामी द्वारा प्रतिभूति देकर निर्मुक्त कराया जाता है या नहीं, किसी अन्य वात के ही समान स्वामियों के विरुद्ध कार्यवाही चालू रहेगी। संबद्ध उच्च न्यायालय के आदेश द्वारा जलयान को, जब वह भारतीय जल में है, गिरफ्तारी सक्षम न्यायालय की अधिकारिता को विचारण के लिए वैसे ही आकर्षित करती है जैसा किसी अन्य वाद की दशा में जैसे किसी स्वामी के विरुद्ध कार्रवाई और वादी द्वारा अभिप्राप्त कोई डिक्री, उसकी अधिकारिता के भीतर उपलभ्य स्वामी की किसी संपत्ति के विरुद्ध, जिसमें जलयान की निर्मुक्ति के लिए स्वामी द्वारा दी गई प्रतिभूति भी है। निष्पादन योग्य होनी चाहिए। तथापि, जैसी कि पहले चर्चा की गई है, यह सिफारिश की जाती है कि यह प्रश्न कि क्या सर्वबंधी या व्यक्तिबंधी कोई कार्रवाई संस्थित की जानी चाहिए अथवा बनी रहनी चाहिए, संबद्ध उच्च न्यायालय पर छोड़ देनी चाहिए, जो हर मामले को गुणागुण के आधार पर जांच करेगा और न्याय के हित में समुचित कार्रवाई करेगा। इस पक्षपर और नावधिकरण विषयों में न्यायालय की अधिकारिता की प्रकृति और विस्तार संबंधी अन्य सिफारिशों पर अध्याय 8 में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है।

10.6. इस रिपोर्ट में पहले न्यायालयों में विलंब के प्रश्न की ओर निर्देश किया गया है जिस पर परवीन सिंह समिति ने ध्यान केंद्रित किया है। इस पर पहले अध्याय 9 में विस्तृत रूप से चर्चा की गई है। विलंब की समस्या का मुकाबला करने के एक और प्रक्रम के रूप में हम नावधिकरण विषयों में कार्यवाही में माध्यस्थम् के लिए एक उपबंध के निगमन की सिफारिश करते हैं, जिसे हम समझते हैं कि सम्प्रति प्रत्येक स्थान पर प्रचलित इस परिवेश में प्रभावी होगी जिसमें मुकदमें बाजी के अधिमान में माध्यस्थम् द्वारा विवादों को सुलझाने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है। प्रस्तावित विधान की एक और विशिष्ट लक्षण, न्यायालय को, तकनीकी विषयों में असेसर की सहायता लेने के लिए समर्थ बनाने वाला सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 140 में अनुरूप उपबंध किया जाना है।

10.7. इस रिपोर्ट के पूर्ववर्ती अध्यायों में अंतर्विष्ट परिचर्चा के परिप्रेक्ष्य में, यह भी सिफारिश की जाती है कि ––

(i) विषयों का व्यापक क्षेत्र जो अब निश्चित रूप से भारतीय नावधिकरण अधिकारिता के भीतर है, विशेष रूप से वे ऐसे सामुद्रिक अपराधों, संविदाओं, अपकृत्यों आदि में संबद्ध है, नावधिकरण न्यायालयों में भी रहनी चाहिए;

(ii) भारतीय नावधिकरण न्यायालयों की अधिकारिता का विस्तार ऐसे सभी जल पर है जो इस बात पर ध्यान दिए बिना कि वे ज्वार द्वारा प्रभावित है या भूबंद्ध हैं या खुले हैं या लवणित है या स्वच्छ है नाव्य जल हैं;

(iii) भारतीय नावधिकरण अधिकारिता का विस्तार खुले समुद्र पर सभी पोतों पर (सावरेन पोतों को छोड़कर) और खुले समुद्र पर किए गए क्षतिकारक कृत्यों पर है, यदि कोई भारतीय तत्व अंतर्ग्रस्त है।

10.8. उपर्युक्त सिफारिशों और सुझावों का समावेश करते हुए, एक प्रारूप विधान, रिपोर्ट के साथ संलग्न है। इस प्रारूप को तैयार करने में परवीन सिंह समिति द्वारा प्रस्तावित प्रारूप भारतीय नावधिकरण अधिनियम में अंतर्विष्ट विभिन्न उपबंधों को और साथ ही, विषय पर ब्रिटिश परिनियम अर्थात् सुप्रीम कोर्ट ऐक्ट, 1981 के सुसंगत उपबंधों को सम्यक् रूप से ध्यान में रखा गया है। तथापि, यहां पर, प्रारूप विधान के विभिन्न उपबंधों पर विस्तृत रूप से परिचर्चा नहीं की जा रही है क्योंकि प्रारूप अधिनियमिति में, इस रिपोर्ट में विस्तृत रूप से पूर्व चर्चित निष्कर्ष हो, समाविष्ट है।

10.9. इस बात की ओर संकेत करना आवश्यक है कि यदि प्रस्तावित प्रारूप विधान स्वीकार और अधिनियमित किया जाता है तो इस विषय पर कतिपय विद्यमान विधान अनावश्यक हो जाएंगे। अतः यह सिफारिश की जाती है कि निम्नलिखित अधिनियम निरसित किए जाने चाहिएं :

1. ऐडमिरल्टी आफेंसेज (कोलोनियल) ऐक्ट, 1849।
2. ऐडमिरल्टी ज्यूरिसडिक्शन (इंडिया) ऐक्ट, 1860।
3. ऐडमिरल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861।
4. कोलोनियल कोर्ट्स आफ ऐडमिरल्टी (इंडिया) ऐक्ट, 1891।
5. मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास उच्च न्यायालयों से संबंधित लेटर्स पेटेंट में नावधिकरण अधिकारिता से संबंध खंड।

प्रारूप विधान में इस आशय का एक उपबंध शामिल किया गया है।

10.10. तात्विकतः हमारी प्रमुख सिफारिशें मात्र दो हैं :

(i) नावधिकरण शक्तियों पर अधिकारिता के प्रयोग करने वाले न्यायालयों और इस रिपोर्ट के उपाबंध VIII में अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार उनकी अधिकारिता और प्रकृति से संबंधित विधान अधिनियमित किया जाना चाहिए; और

(ii) अंतरराष्ट्रीय अभिसमयों, व्यापारों और करारों के कार्यान्वयन की प्रक्रिया का पुनर्विलोकन करने और उसमें शीघ्रता करने के लिए उच्च विभागीय अधिकारियों की एक समिति गठित की जाए।

इन दोनों सुधारों को बहुत पहले किया जाना था और उच्चतम न्यायालय ने भी एलिजाबेथ के मामले में[3] उनकी अत्यावश्यकता पर जोर दिया है। हमें आशा है कि सरकार इस रिपोर्ट को शीघ्र अधिमान देगी और उसके अनुसरण में शीघ्र कार्रवाई करेगी।

(न्यायमूर्ति के० एन० सिंह)

अध्यक्ष

(न्यायमूर्ति एम० रंगनाथन)	(प्रो० डी० एम० सदाशिव)
सदस्य	सदस्य
(पी० एन० बख्शी)	(एम० मार्कोस)
सदस्य (अंशकालिक)	सदस्य (अंशकालिक)

(सी० प्रभाकर राव)

सदस्य—सचिव

पाद टिप्पण—अध्याय 10

1. एलिजाबेथ का मामला (1992) 2 जे टी (एस सी) 65
2. जैसे सावरेन और राजनयिक उन्मुक्तियां, आदि
3. वही, पृ० 1

उपाबंध I

नावधिकरण विषयक अपराध (औपनिवेशिक) अधिनियम, 1849

(12 और 13 विक्टोरिया, सी० 95)

नावधिकरण विषयक अधिकारिता के भीतर किए गए अपराधों के हर मेजेस्टी के उपनिवेशों में अभियोजन और विचारण के लिए उपाबंध करने के लिए अधिनियम।

(1 अगस्त, 1849)

(निरसित)

(उद्देशिका—53 और 55 विक्टोरिया, सी० 67 द्वारा निरसित)

1. उपनिवेशों में नावधिकरण विषयक अपराधों का विचारण—यदि किसी उपनिवेश के भीतर कोई व्यक्ति समुद्र पर या किसी बन्दरगाह, नदी, निवेशिका या स्थान पर, जहां ऐडमिरल या ऐडमिरलों का किसी भी प्रकार का प्राधिकार या अधिकारिता है, हुए किसी राजद्रोह, समुद्री डकैती, महापराध, लूटमार, हत्या, षडयंत्र या किसी भी प्रकृति या किस्म के, वह चाहे जो हो, अन्य अपराध के किए जाने के लिए आरोपित किया जाएगा या यदि समुद्र पर या किसी ऐसे बन्दरगाह, नदी, निवेशिका या स्थान पर किसी ऐसे अपराध के किए जाने से आरोपित किया जाएगा तो उसे विचारण के लिए किसी उपनिवेश पर लाया जाएगा।

तब और प्रत्येक ऐसे मामले में ऐसे उपनिवेश के सभी मजिस्ट्रेटों, जस्टिस आफ पीस, लोक अभियोजकों, ज्यूरियों, न्यायाधीशों, न्यायालयों, लोक अधिकारियों और अन्य व्यक्तियों को ऐसे अपराधों की जांच करने, विचारण, सुनवाई अवधारण और न्यायनिर्णयन के लिए वही अधिकारिता और प्राधिकार होंगे और वे उसका प्रयोग करेंगे तथा वे इसके द्वारा यथा पूर्वोक्त इस प्रकार आरोपित ऐसे व्यक्ति को लाने के लिए ऐसी सभी कार्यवाहियां संस्थित करने तथा उन्हें चलाने के लिए और किसी ऐसे अपराध के लिए किसी ऐसे व्यक्ति के विचारण के लिए और उसके आनुषंगिक तथा पारिणामिक जिससे वह यथा पूर्वोक्त ऐसे उपनिवेश की विधि द्वारा होगा और होना चाहिए यदि ऐसा अपराध वहां होता और ऐसा व्यक्ति उन्हें कतिपय के लिए आरोपित किया गया होता जो किसी ऐसे उपनिवेश की सीमाओं के भीतर अवस्थित जल पर हुआ हो और ऐसे उपनिवेश के दांडिक न्यायालयों की स्थानीय अधिकारिता की सीमाओं के भीतर है तो क्रमशः प्रयुक्त संस्थित और चलाई गई होती, क्रमशः प्राधिकृत, सशक्त और अपेक्षित है।

(क) प्रारंभिक शब्द 54 और 55 विक्टो० सी० 67 द्वारा निरसित कर दिए गए थे।

2. (54 और 55 विक्टोरिया सी० 67 द्वारा निरसित)।

3. उपबंध आदि, जहां मृत्यु, किसी उपनिवेश में या समुद्र आदि पर होती है, समुद्र आदि पर पहुंचाई गई क्षतियों से अनुसरित होते हैं। जहां किसी व्यक्ति की समुद्र पर या किसी बंदरगाह, निवेशिका या ऐसे स्थान पर जहां एडमिरल या एडमिरलों की शक्ति, प्राधिकार या अधिकारिता है, किसी उपनिवेश में या ऐसे उपनिवेश से बाहर किसी स्थान पर ऐसे व्यक्ति को नीचतापूर्वक आघात किए देने या उपहृति करने के कारण किसी आघात, विषपान या उपहृति से मृत्यु होगी वहां किसी ऐसे मामले के संबंध में किया गया प्रत्येक अपराध चाहे वह हत्या या मानववध के तुल्य हो, या हत्या के तथ्य के पूर्व का उपसाधन हो या तथ्य हत्या अथवा मानववध के

बाद का हो, ऐसे उपनिवेश में उसी रीति से और सब बातों में व्यवहृत, जांच विचारित, अवधारित और दंडित किया जा सकेगा, मानो ऐसा अपराध पूर्वरूप से उस उपनिवेश में किया गया हो।

और यदि किसी उपनिवेश में यथापूर्वोक्त किसी ऐसे अपराध के लिए किसी व्यक्ति को किसी ऐसे व्यक्ति की मृत्यु की बाबत आरोपित किया जाएगा जो नीचतापूर्वक आघात पहुंचाने, विष देने या अन्यथा उपहति के कारण, समुद्र पर या किसी बन्दरगाह, नदी, निवेशिका में या ऐसे स्थान पर जहां एडमिरल या एडमिरलों की शक्ति, प्राधिकार या अधिकारिता है ऐसे आघात, विषपान या उपहति से मृत्यु हुई होगी, वहां ऐसा अपराध इस अधिनियम के प्रयोजन के लिए पूर्णरूप से समुद्र पर किया गया अवधारित किया जाएगा।

(क) प्रारंभिक शब्द, 54 और 55 विक्टोरिया सी० 67 द्वारा निरसित।

4. (लागू न होने के कारण लोप किया गया)।

5. "उपनिवेश" का निर्वचन—इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए "उपनिवेश" शब्द से, यूनाइटेड किंगडम के भीतर के किसी द्वीप और मान, गर्नसे, जर्सी, एल्डरनी और शार्क द्वीप तथा क्रमशः उनके पार्श्वस्थ भूमि को छोड़कर हर मैजस्टी का कोई द्वीप, बगान, उपनिवेशी अधिक्षेत्र किला या कारखाना अभिप्रेत है।

(क) प्रारंभिक शब्द, 54 और 55 विक्टोरिया, सी० 67 द्वारा निरसित किए गए।

(ख) और ब्रिटिश भारत शामिल है, देखिए 23 और 24 विक्टोरिया, सी० 88 एस 1 22क पूर्वोक्त।

(ग) शब्द 44 और 45 विक्टोरिया सी० 59 द्वारा निरसित।

6. 41 और 42 विक्टोरिया सी० 72 द्वारा निरसित।

उपाबंध II

नावधिकरण विषयक् अधिकारिता (भारत) अधिनियम, 1860

(23 और 24, विक्टोरिया सी० 88)

भारत में हर मेजेस्टी के राज्यक्षेत्र पर उपनिवेशों में नावधिकरण अधिकारिता के लिए कतिपय उपबंधों के विस्तार के लिए अधिनियम

[13 अगस्त, 1860]

(उद्देशिका बाबत 12 और 13 विक्टोरिया सी 96 एस 5 और अधिनयमन शब्द, 55 और 56 विक्टोरिया सी 67 द्वारा निरसित किए गए)

1. **मूल अधिनियम का ब्रिटिश भारत और ब्रिटिश बर्मा को लागू होना**—नावधिकरण विषयक अपराध (औपनिवेशिक) अधिनियम, 1849 जैसे उपनिवेशों को लागू होता है वैसे ही ब्रिटिश भारत और बर्मा को लागू होगा।

(क) ए.ए.पी.ओ 1937 द्वारा प्रतिस्थापित,

2. **किसी प्रेसिडेंसी के सुप्रीम कोर्ट द्वारा विचारण किए जाने के लिए हकदार व्यक्तियों के मामले में कार्यवाही**—परन्तु सदैव यह कि जहां भारत में किसी स्थान के भीतर कोई व्यक्ति किसी ऐसे अपराध के किए जाने के संबंध में, जिसकी बाबत उक्त अधिनियम द्वारा अधिकारिता दी गई है, आरोपित है या जहां ऐसे किसी अपराध के किए जाने से आरोपित कोई व्यक्ति उक्त अधिनियम के अधीन विचारण के लिए भारत में किसी स्थान पर लाया जाता है, यदि अपने विचारण के दौरान किसी समय उस स्थान पर जहां वह इस प्रकार आरोपित किया गया है, या विचारण के लिए लाया गया है, दांडिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले न्यायालय को यह प्रतीत करवा देता है कि यदि अपराध ऐसे स्थान पर किया गया होता तो उस दशा में उसका विचारण की तीन प्रेसिडेन्सियों में से किसी एक के सुप्रीम कोर्ट द्वारा ही किया जा सका और तदनुसार ऐसे किसी सुप्रीम कोर्ट द्वारा विचारण किए जाने का दावा करता है तो यथापूर्वोक्त दांडिक अधिकारिता का प्रयोग करने वाला न्यायालय तथ्य और दावा, ऐसे स्थान के गवर्नर या उसके, मुख्य स्थानीय प्राधिकारी को प्रमाणित करेगा और तदुपरि ऐसा गवर्नर या मुख्य स्थानीय प्राधिकारी आदेश देगा और आरोपित व्यक्ति को अभिरक्षा में ऐसी किसी प्रेसिडेन्सी में भिजवाएगा जिसे ऐसा गवर्नर ऐसी प्रेसिडेन्सी के सुप्रीम कोर्ट के समक्ष विचारण के लिए ठीक समझेगा; और उक्त सुप्रीम कोर्ट तथा प्रेसिडेन्सी में सभी लोक अधिकारी और अन्य व्यक्ति ऐसे अपराध से आरोपित व्यक्ति के संबंध में वैसी ही अधिकारिता और प्राधिकार रखेंगे और कार्रवाई करेंगे मानो वह ऐसे सुप्रीम कोर्ट की सामान्य अधिकारिता की सीमाओं के भीतर किया गया होता या मूल रूप से किए जाने पर आरोपित किया गया होता।

9—1 M of L&J/ND/99

उपाबंध III

एड्मिरेल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861

(24 और 25 विक्ट० सी० 10)

1861 ई०

नावधिकरण उच्च न्यायालय की अधिकारिता में वृद्धि करने तथा प्रथा में सुधार के लिए अधिनियम

[17 मई, 1861]

(उद्देशिका)

1. **संक्षिप्त नाम**—इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम सभी प्रयोजनों के लिए एड्मिरेल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861 है।

2. **पदों का निर्वचन**—इस अधिनियम के निर्वचन में और सभी प्रयोजनों के लिए (जब तक संदर्भ या विषय से असंगत न हो) निम्नलिखित पदों का वही अर्थ होगा जो उनके इसमें इसके पश्चात् दिए गए हैं, अर्थात् :—

"पोते" के अन्तर्गत चप्पू से न नोदित होने वाले नौचालन में प्रयुक्त किसी प्रकार के यान है ;

"मामलों" के अन्तर्गत नावधिकरण न्यायालय में कोई मामला, वाद, अनुयोग या अन्य कार्यवाही है।

* * * * *

16. **जहां निष्पादन में लिए गए माल के लिए कोई दावा किया जाता हो वहां कार्यवाही**—यदि नावधिकरण उच्च न्यायालय की किसी प्रक्रिया के अधीन निष्पादन में लिए गए माल या जंगम वस्तु के लिए था उसके अभिग्रहण या उससे संबंधित किसी कार्य या ऐसे किसी माल या जंगम वस्तु के आगम या मूर की बाबत भूस्वामी द्वारा किए गए के लिए या किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा जो ऐसा पक्षकार नहीं है जिसे आदेशिका जारी की गई है, कोई दावा किया जाएगा तो उस न्यायालय का रजिस्ट्रार आदेशिका के निष्पादन के भारसाधक अधिकारी के आवेदन पर, ऐसे अधिकारी के विरुद्ध कोई कार्रवाई किए जाने से पूर्व या पश्चात् ऐसे आदेशिका जारी करने या दावा करने वाले पक्षकार दोनों को उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का समन जारी कर सकता है और तब ऐसा कोई अनुयोग जो हर मजेस्टी के सुपीरियर कोर्टस आफ रिकार्ड में या किसी स्थानीय या अवर न्यायालय में ऐसे दावा, अभिग्रहण, पूर्वोक्त कार्य या बात की बाबत लाया गया होगा उस पर रोक लग जाएगी और वह न्यायालय जिसमें ऐसा अनुयोग लाया गया होगा या उसका न्यायाधीश ऐसे समन के जारी किए जाने के तथा यह कि माल और जंगम वस्तु के निष्पादन में इस प्रकार किए जाने के सबूत पर अनुयोग लाने वाले पक्षकार पक्षकार को यह आदेश दे सकेगा कि वह उक्त नावधिकरण न्यायालय से समन जारी किए जाने के पश्चात् अनुयोग पर सभी कार्यवाही का खर्च दे; और दावा पर अधिनिर्णय देगा और उनकी बाबत पक्षकारों के बीच और कार्यवाही के खर्च के बाबत ऐसे आदेश देगा जो वह उचित समझे वह आदेश उसी प्रकार प्रवृत्त होगा मानो वह उच्च न्यायालय में लाए गए किसी वाद के न्यायालय में होता है। जहां पूर्वोक्त रूप में ऐसा कोई दावा किया जाएगा तो दावेदार आदेशिका के निष्पादन के भारसाधक अधिकारी के पास दावा किए गए माल की रकम या मूल्य जमा करेगा, मूल्य के बारे में विवाद की दशा में उसका मूल्यांकन द्वारा किया जाएगा, यह मूल्य दावा पर न्यायाधीश के निर्णय का अनुपालन करने के लिए यह वह रकम जो वह अधिकारी ऐसा निर्णय होने तक कब्जा बनाए रखने के लिए खर्च के रूप में प्रभारित करने के लिए अनुज्ञात किया जा सकता है। अधिकारी द्वारा न्यायालय में संदत्त किया जाएगा और दावेदार के ऐसा करने में असफल होने की दशा में, वह अधिकारी, माल को बेच सकता है मानो उसके लिए कोई दावा न किया गया हो और विक्रय का आगम न्यायालय के निर्णय का अनुपालन करने के लिए न्यायालय में संदत्त करेगा।

* * * * *

18. **नावधिकरण न्यायालय में पक्षकार ट्रिनिटी मास्टर्स आदि द्वारा निरीक्षण के लिए आदेश हेतु आवेदन कर सकता है**—नावधिकरण उच्च न्यायालय में किसी मामले में कोई पक्षकार किसी पोत, या अन्य वैयक्तिक या पूर्व स्वामिक स्थायी संपत्ति के, जिसका निरीक्षण मामले के विवाधक के लिए तात्विक होगा, उक्त मामले के विचारण के लिए नियुक्त ट्रिनिटी मास्टर्स या अन्य व्यक्तियों से निरीक्षण किए जाने के आदेश के लिए उक्त न्यायालय से आवेदन करने को स्वतंत्र होगा और न्यायालय ऐसे आदेश में उससे उद्भूत होने वाले खर्च आदि को ठीक समझे, आदेश कर सकेगा।

* * * * * * *

25. **रजिस्ट्रार, उपरजिस्ट्रार, सहायक रजिस्ट्रार की शक्तियां**—नावधिकरण उच्च न्यायालय का रजिस्ट्रार उच्च न्यायालय में किसी मामले या प्रकरण के संदर्भ में वैसी ही शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा जैसी कि उक्त न्यायालय के न्यायाधीश का कोई प्रतिनिधि अपने चैम्बर में बैठकर इससे पहले विधिपूर्वक करता होता, तथा नावधिकरण उक्त उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को इस अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम द्वारा प्रदत्त या उसमें निहित सभी शक्तियां और प्राधिकारों का प्रयोग उक्त न्यायालय के उप रजिस्ट्रार या सहायक रजिस्ट्रार द्वारा किया जा सकेगा।

26. **रजिस्ट्रार शपथ दिला सकता है**—नावधिकरण उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार को उक्त न्यायालय में लंबित किसी मामले या प्रकरण में शपथ दिलाने की शक्ति होगी;———

* * * * * * *

28. **परीक्षकों की अर्हता**—कोई अधिवक्ता (एडवोकेट) बैरिस्टर-एट-ला, प्रावटर, अटर्नी या सालिसिटर नावधिकरण उच्च न्यायालय का परीक्षक नियुक्त किया जा सकता है।

* * * * * * *

33. **नावधिकरण न्यायालय/अपील न्यायालय आदि के लिए जमानत ली जा सकती है**—नावधिकरण उच्च न्यायालय में किसी मामले में उक्त न्यायालय तथा अपील न्यायालय के निर्णय के उत्तर में जमानत ली जा सकती है और उक्त नावधिकरण उच्च न्यायालय उसकी गिरफ्तारी के अधीन की गई किसी संपत्ति का निर्मोचन तब तक रोके रख सकता है जब तक जमानत न दी गई हो और किसी अपील में या नावधिकरण उच्च न्यायालय के आदेश में अपील न्यायालय अपने आदेश के ऐसे प्रतिभू या प्रतिभुओं के विरुद्ध जिन्होंने जमानत पत्र पर हस्ताक्षर किए हैं इस प्रकार प्रवृत्त कर सकता है मानों जमानत अपील न्यायालय में दी गई है।

34. **प्रतिवाद में सुनवाई**—नावधिकरण उच्च न्यायालय नुकसानी के किसी मामले में प्रतिवादी के आवेदन पर और उसी टक्कर की बाबत उसके द्वारा उठाई गई नुकसानी के लिए प्रतिवाद संस्थित किए जाने पर यह निदेश दे सकता है कि मूल मामले और प्रति मामले की सुनवाई एक ही समय की जाए और यदि मूल मामले में प्रतिवादी का पोत गिरफ्तार किया गया है तो उसके द्वारा न्यायालय के उत्तर में प्रतिभूति दी गई है और प्रतिवाद में वादी का पोत गिरफ्तार नहीं किया जा सकता और उसमें न्यायालय का उत्तर देने के लिए प्रतिभूति नहीं दी गई है तब न्यायालय यदि उचित समझे मूल वाद में कार्यवाही तब तक लंबित कर सकता है जब तक प्रतिवाद में निर्णय के उत्तर के लिए प्रतिभूति नहीं दे दी जाती है।

सन् ईस्वी 1890

कालोनियल कोर्ट्स आफ एडमिरल्टी ऐक्ट, 1890

(53 और 54 विक्ट० सी० 27)

हर मजेस्टी की डोमिनियनों में और यूनाइटेड किंगडम के बाहर अन्यत्र नावधिकरण अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में विधि का संशोधन करने के लिए अधिनियम

1. इस अधिनियम को कालोनियल कोर्ट्स आफ एडमिरल्टी कहा जाएगा।

2. (i) ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में ऐसा प्रत्येक न्यायालय, जिसे तत्समय इस अधिनियम के अनुसरण में नावधिकरण न्यायालय के रूप में घोषित किया जाता है, या जिसे, यदि कब्जाधीन क्षेत्र में ऐसी कोई घोषणा प्रवृत्त नहीं है, तो उसमें उसे आरंभिक असीमित सिविल अधिकारिता है, इस अधिनियम में उल्लिखित अधिकारिता वाला नावधिकरण न्यायालय होगा और उस अधिकारिता के प्रयोजन के लिए उन सभी शक्तियों का प्रयोग कर सकेगा, जिन्हें वह अपनी अन्य सिविल अधिकारिता के प्रयोजन के लिए रखा है और ऐसे न्यायालय को इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रतिनिर्देश में इस अधिनियम में कोर्ट आफ एडमिरल्टी कहा गया है। जहां ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में गवर्नर राज्यपाल एकमात्र न्यायिक प्राधिकारी है वहां इस कार्रवाई के प्रयोजन के लिए "न्यायालय" पद के अन्तर्गत ऐसा राज्यपाल भी है।

(ii) किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी की अधिकारिता इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, वैसे ही स्थानों, व्यक्तियों, विषयों और वस्तुओं पर होगी, जैसे इंग्लैंड में उच्च न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता, चाहे वह किसी कानून के कारण है या अन्यथा है, और कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी उसी रीति में और उसी पूर्ण विस्तार तक ऐसी अधिकारिता का प्रयोग कर सकेगा, जिस रीति और विस्तार तक इंग्लैंड में उच्च न्यायालय करता है और उतनी ही सावधानी बरतेगा जितनी वह न्यायालय अन्तरराष्ट्रीय विधि और राष्ट्रों के सौहार्द्र के लिए बरतता है।

(iii) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, उप-नावधिकरण न्यायालय का निर्देश करने वाली अधिनियमिति, जो इम्पीरियल पार्लियामेंट के अधिनियम में या किसी कालोनियल विधि में अन्तर्विष्ट है, कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को लागू होगी और उसे इस प्रकार पढ़ा जाएगा मानो क्रमशः "उप नावधिकरण न्यायालय" या ऐसे उन नावधिकरण न्यायालयों या उसके न्यायाधीश का निर्देश करने वाले अन्य पदों के स्थान पर उसमें "कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी" पर रखा गया है और कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को तदनुसार अधिकारिता होगी :

परन्तु इसके अन्तर्गत निम्नलिखित है :

(क) इंग्लैंड में उच्च न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता का निर्देश करने वाली इम्पीरियल पार्लियामेंट के किसी अधिनियम में कोई अधिनियमिति को जब वह किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को लागू की गई है, इस प्रकार पढ़ा जाएगा मानो इंग्लैंड और वेल्स के स्थान पर उसमें उस कब्जाधीन क्षेत्र का नाम रखा गया है; और

(ख) कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को नेवल प्राइज ऐक्ट, 1864, और स्लेव ट्रेड ऐक्ट, 1873 के अधीन और किसी व्यवसाय पर, उन अधिनियमों द्वारा उप नावधिकरण न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता होगी न कि उनके द्वारा अनन्य रूप से नावधिकरण उच्च न्यायालय या उच्च न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता होगी; किन्तु जब तक तत्समय सम्यक् रूप में प्राधिकृत न किया गया हो, इस अधिनियम के कारण नेवल प्राइज ऐक्ट, 1864 के अधीन या प्राइज के संबंध में अन्यथा किसी अधिकारिता का प्रयोग नहीं करेगा; और

(ग) किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को इस अधिनियम के अधीन किसी अपराध के लिए किसी ऐसे व्यक्ति का विचारण करने या उसे दंड देने की अधिकारिता नहीं होगी, जो इंग्लैंड की विधि के अनुसार अभ्यारोपण के बारे में दंडनीय है; और

(घ) सपरिषद् आदेश द्वारा किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को समय-समय पर प्रदत्त अधिकारिता से, ऐसे न्यायालय को समुद्र में हर मजेस्टी की नौसेना से संबंधित विधियों और विनियमों के बारे में या हर मजेस्टी की नौसेना के अनुशासन के लिए उपबंध करने वाले किसी अधिनियम पर विचार करने की गुरुतर अधिकारिता नहीं होगी।

(iv) जहां किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में कोई न्यायालय किसी देश के मुख्य भाग के बाहर या ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के वैसे ही अन्य भाग के बाहर उत्पन्न विषयों के बारे में इस अधिनियम के अधीन प्रयोक्तव्य किसी अधिकारिता का प्रयोग करता है, वहां वह अधिकारिता इस अधिनियम के अधीन प्रयोग की गई समझी जाएगी, न कि अन्यथा।

3. **नावधिकरण अधिकारिता के बारे में उपनिवेशिक विधान मंडल की शक्ति**—ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र का विधान मंडल किसी उपनिवेशिक विधि द्वारा—

(क) उस कब्जाधीन क्षेत्र में असीमित सिविल अधिकारिता, चाहे आरंभिक हो या अपीली, किसी न्यायालय को कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी घोषित कर सकेगा और इस अधिनियम के अधीन ऐसे न्यायालय द्वारा उसकी अधिकारिता के प्रयोग के लिए उपबंध कर सकेगा और ऐसी अधिकारिता के विस्तार को प्रादेशिक रूप में या अन्यथा सीमित कर सकेगा, और

(ख) उस कब्जाधीन क्षेत्र में किसी कनिष्ठ या अधीनस्थ न्यायालय को ऐसी आंशिक या सीमित नावधिकरण अधिकारिता ऐसे विनियमों के अधीन और ऐसी अपील सहित (यदि कोई हो), जो ठीक प्रतीत हो, प्रदान कर सकेगा :

परन्तु ऐसी कोई उपनिवेशिक विधि कोई ऐसी अधिकारिता प्रदान नहीं करेगी जो इस अधिनियम द्वारा कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को प्रदान नहीं की गई है।

4. **हर मजेस्टी की सम्मति के लिए उपनिवेशिक विधि का आरक्षण**—इस अधिनियम के अनुसरण में बनायी गई प्रत्येक उपनिवेशिक विधि को, जो इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के बारे में ऐसे कब्जाधीन क्षेत्र के किसी न्यायालय की अधिकारिता या पद्धति या प्रक्रिया में प्रभाव डालती है या जो इस धारा में उल्लिखित यथापूर्वोक्त ऐसी किसी उपनिवेशिक विधि को परिवर्तित करती है, जो पहले ही पारित की जा चुकी है, जब तक कि वह सेक्रेटरी आफ स्टेट के माध्यम से हर मजेस्टी द्वारा पहले ही अनुमोदित न की गई हो, या तो उस पर हर मजेस्टी की इच्छा के संज्ञापन के लिए उसे आरक्षित रखा जाएगा या उसमें यह उपबंध करने वाला निलम्बन खंड होगा कि ऐसी विधि तब तक प्रवृत्त नहीं होगी जब तक उस पर हर मजेस्टी की इच्छा उस ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में सार्वजनिक रूप से संज्ञापित न की गई हो, जिस में वह पारित की गई है।

(यह धारा भारतीय विधि को लागू नहीं होगी)

5. **स्थानीय नावधिकरण अपील**—इस अधिनियम के अधीन न्यायालय के नियमों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम द्वारा न्यायालय को प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में उसके द्वारा दिए गए या किए गए निर्णय उसी प्रकार स्थानीय अधिकारिता के

यदि कोई है, अधीन होंगे जैसे न्यायालय की सामान्य सिविल अधिकारिता के प्रयोग में उसके निर्णय होते हैं, और ऐसी अपील का संज्ञान करने वाले न्यायालय को उस प्रयोजन के लिए, कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी को इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त सभी अधिकारिता होगी।

6. सपरिषद् क्वीन को नावधिकरण अपील—(1) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के किसी न्यायालय के निर्णय से अपील, या तो जहां साधिकार स्थानीय अपील नहीं है या स्थानीय अपील पर विनिश्चय के पश्चात् अपील, सपरिषद् क्वीन की हर मजेस्टी को हो सकेगी।

(2) सपरिषद् क्वीन की हर मजेस्टी द्वारा किसी विशिष्ट मामले में विनिर्दिष्टतः अन्यथा अनुज्ञात के सिवाय धारा के अधीन अपील निम्नलिखित मामलों में अनुज्ञात नहीं की जाएगी—

(क) किसी ऐसे निर्णय का नहीं है तब तक जब तक उस न्यायालय ने जिसके विनिश्चय अपील की गई है, ऐसी अपील के लिए इजाजत न दी हो, या

(ख) किसी ऐसे निर्णय से, जब तक कि अपील की अर्जी नियमों द्वारा विहित समय के भीतर न की गई हो, या यदि कोई समय विहित नहीं किया है तो उस निर्णय की तारीख से छह मास के भीतर न की गई हो या यदि अपील के लिए इजाजत दे दी गई है तो ऐसी इजाजत की तारीख से।

(3) इस अधिनियम के अधीन अपीलों के इस प्रयोजन के लिए सपरिषद् क्वीन की न्यायिक समिति को इस धारा के अधीन, नियमों के अधीन रहते हुए निर्णय करने और उन्हें प्रवृत्त करने, चाहे वे अन्तर्वर्ती हों या अंतिम, अवमान के लिए दंड देने, न्यायालय में धन के संदाय की अध्यपेक्षा करने, या किसी ऐसे अन्य प्रयोजन के लिए, जो सपरिषद् हर मजेस्टी को हाई कोर्ट ऑफ डेलिगेट्स की शक्तियों का अन्तरण करने वाले अधिनियम को पारित करने के पूर्व ऐसे न्यायालय द्वारा धारित थी या जो इंग्लैंड में उच्च न्यायालय द्वारा या उस न्यायालय द्वारा, जिससे वैसे ही विषयों के संबंध में अपील की गई है, जैसे इस अधिनियम के अधीन अपीलों की विषय-वस्तु गठित करते हैं, तत्समय धारित हैं।

(4) इस अधिनियम के अधीन अपीलों के बारे में पूर्वोक्त प्रयोजनों के लिए या अन्यथा सपरिषद् क्वीन या प्रिवि कौंसिल की न्यायिक समिति के सभी आदेशों का हर मजेस्टी के डोमिनियनों के सम्पूर्ण पर, और उन सभी स्थानों में, जिनमें हर मजेस्टी को अधिकारिता है, पूर्ण प्रभाव होगा।

(5) यह धारा इस अधिनियम के अधीन से अन्यथा उत्पन्न सपरिषद् हर मजेस्टी या प्रिवि कौंसिल की न्यायिक समिति के प्राधिकार के अतिरिक्त है न कि उसके अल्पीकरण में, और सपरिषद् हर मजेस्टी को अपीलों के संबंध में या सपरिषद् हर मजेस्टी या प्रिवि कौंसिल की न्यायिक समिति की शक्तियों के संबंध में सभी अधिनियमितियां, चाहे वे नियम बनाने और आदेश करने के लिए हों या अन्यथा, सपरिषद् हर मजेस्टी द्वारा अन्यथा निर्देशित के सिवाय, इस अधिनियम के अधीन सपरिषद् हर मजेस्टी की अपीलों को विस्तारित होंगी।

7. *न्यायालय के नियम*—(1) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता, चाहे आरंभिक या अपीली हो, के प्रयोग में किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में किसी न्यायालय में प्रक्रिया और पद्धति (जिसके अंतर्गत फीस और खर्च भी है) को विनियमित करने के लिए न्यायालय के नियम, उसी प्राधिकारी द्वारा और उसी रीति में बनाए जा सकेंगे जैसे उक्त न्यायालय में अपनी साधारण सिविल अधिकारिता के प्रयोग में पद्धति प्रक्रिया, फीस और खर्च से संबंधित नियम बनाए जाते हैं :

परन्तु इस धारा के अधीन नियम, इस अधिनियम द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय, दास व्यापार से संबंधित विषयों को विस्तारित नहीं होंगे और (इस धारा द्वारा यथा उपबंधित के सिवाय) तब तक प्रवृत्त नहीं होंगे जब तक वे सपरिषद् हर मजेस्टी द्वारा अनुमोदित नहीं कर दिए जाते हैं, किन्तु प्रवृत्त होने पर उनका पूर्ण प्रभाव होगा मानों इस अधिनियम में अधिनियमित किए गए थे और उससे असंगत कोई भी अधिनियमिति, जहां तक वह इस प्रकार असंगत है, निरसित की जाएगी।

(2) सपरिषद् हर मजेस्टी के लिए इस धारा के अधीन बनाए गए नियमों का अनुमोदन करने में यह घोषणा करना विधिपूर्ण होगा कि ब्यौरे के या स्थानीय महत्व के किन्हीं विषयों के बारे में इस प्रकार बनाए गए नियम, इस धारा द्वारा अपेक्षित अनुमोदन के बिना उन्हें प्रतिसंहृत, फेरफारित, या उनमें अभिवर्धन किया जा सकेगा।

(3) ऐसे नियम इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त किसी अधिकारिता का पूर्ण न्यायालय द्वारा, या उसके किसी न्यायाधीश या किन्हीं न्यायाधीशों द्वारा प्रयोग करने के लिए उपबंध कर सकेंगे और किन्हीं नियमों के अधीन रहते हुए, जहां न्यायालय की साधारण सिविल अधिकारिता किसी भी दशा में प्रयोग किसी एकल न्यायाधीश द्वारा प्रयोग की जा सकती है और इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता वैसी ही दशा में किसी एकल न्यायाधीश द्वारा प्रयोग की जा सकेगी।

8. **नावधिकरण और क्राउन के अधिकार**—(1) इस धारा के उपबंधों के अधीन रहते हुए, इस अधिनियम की कोई भी बात ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में नावधिकरण के या क्राउन के किन्हीं अधिकारों को परिवर्तित नहीं करेगी : और अधिनियम में ऐसे अधिकारों और समपहरणों के विरुद्ध जब किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के किसी न्यायालय द्वारा निर्णय दिया जाता है, तब वे, किसी अन्य अधिनियम द्वारा अन्यथा उपबंधित को छोड़कर अधिसूचित किए जाएंगे, उनका हिसाब दिया जाएगा और उनके बारे में ऐसी रीति में कार्रवाई की जाएगी, जैसी खजाना समय-समय पर निदेशित करे और प्रत्येक कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी के और ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग करने वाले प्रत्येक अन्य न्यायालय के अधिकारी उक्त अधिकारों और समपहरणों के बारे में ऐसे निदेशों का अनुपालन करेंगे, जो खजाना द्वारा समय-समय पर दिए जाएं।

(2) सपरिषद् क्वीन की हर मजेस्टी के लिए आदेश द्वारा यह निदेश देना विधिपूर्ण होगा कि किन्हीं शर्तों, अपवादों, सीमाओं और आदेश में अंतर्विष्ट विनियमों के अधीन रहते हुए, ऐसे उक्त अधिकार और समपहरण, जिनके विरुद्ध ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में न्यायालय द्वारा निर्णय दिया गया है, उक्त कब्जाधीन क्षेत्र के राजस्व का या तो सदैव के लिए अथवा ऐसी सीमित अवधि के लिए भाग होंगे या ऐसे विखंडन के अधीन होंगे, जो आदेश में विनिर्दिष्ट किया जाए।

(3) यदि और जब तक ऐसे अधिकारों या समपहरणों में से कोई इस अधिनियम या किसी अन्य अधिनियम के कारण उक्त कब्जाधीन क्षेत्र के राजस्व का भागरूप है, तो उसको तत्समय लागू किसी विधि के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कब्जाधीन क्षेत्र की सरकार द्वारा उन्हें निर्देशित किया जाएगा और खजाना को उसके संबंध में कोई शक्ति नहीं होगी।

9. **उप नावधिकरण न्यायालय स्थापित करने की शक्ति**—(1) हर मजेस्टी के लिए ग्रेट सील के अधीन कमीशन द्वारा नावधिकरण को किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में उप नावधिकरण न्यायालय स्थापित करने के लिए सशक्त करना विधिपूर्ण होगा।

(2) ब्रिटिश कब्जाधीन में उप नावधिकरण न्यायालय की स्थापना पर नावधिकरण स्व-हस्ताक्षरित लेख द्वारा और नावधिकरण के कार्यालय की मुद्रा से ऐसे प्ररूप में, जो नावधिकरण निदेशित करे, एक न्यायाधीश, रजिस्ट्रार मार्शल और न्यायालय के अन्य अधिकारी

नियुक्त कर सकेगा और किसी नियुक्ति को रद्द कर सकेगा; और ऐसे न्यायालय की किसी अन्य अधिकारिता के अतिरिक्त, (इस अधिनियम या हर मजेस्टी से उक्त कमीशन द्वारा अधिरोपित परिसीमाओं के अधीन रहते हुए), ऐसे न्यायालय में, उस ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के किन्हीं न्यायालयों को इस अधिनियम द्वारा या उसके कारण प्रदत्त सम्पूर्ण अधिकारिता या उसके किसी भाग को निहित कर सकेगा और ऐसे विधान को फेरफारित या विखंडित कर सकेगा तथा जब ऐसा विधान प्रवृत्त हो, तो ऐसे अंतिम उल्लिखित न्यायालयों की इस प्रकार निहित अधिकारिता के प्रयोग करने की शक्ति को निलंबित कर सकेगा :

परन्तु—

(क) इस धारा की कोई बात, भारत में (. . . . . . या किसी अन्य ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में), जिसमें किसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए कोई प्रतिनिधित्व वाला विधान मंडल है, प्राइज, हर मजेस्टी की नौसेना, दास व्यापार, ऐसे मामलों, जिनके संबंध में दि फारेन एनलिस्टमैंट ऐक्ट, 1870 या दि पैसिफिक आईलैंडर्स प्रोटेक्शन ऐक्टस, 1872 और 1875 द्वारा कार्रवाई की जानी है, या ऐसे मामलों के संबंध में, जिनमें विदेशों के साथ संधियों या अभिसमयों के बारे में प्रश्न उत्पन्न होते हैं, या अन्तरराष्ट्रीय विधि से संबंधित कुछ प्रयोजन को छोड़कर, इस प्रकार स्थापित किसी उप नावधिकरण न्यायालय को प्राधिकृत नहीं करेगी ; और

(ख) किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में किन्हीं उप नावधिकरण न्यायालयों के न्यायाधीश, रजिस्ट्रार, मार्शल या अधिकारी के पद की किसी रिक्ति की दशा में उस कब्जाधीन क्षेत्र का गवर्नर तब तक रिक्ति को भरने के लिए उपयुक्त व्यक्ति नियुक्त कर सकेगा, जब तक नावधिकरण द्वारा उस पद के लिए नियुक्ति नहीं की जाती है।

(3) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्रों में न्यायालयों से सपरिषद् हर मजेस्टी को अपीलों के संबंध में इस अधिनियम के उपबंध उप नावधिकरण न्यायालयों से अपीलों को लागू होंगे, किन्तु उप नावधिकरण न्यायालयों से अपीलों के बारे में बनाए गए नियम और आदेश, ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्रों में उक्त न्यायालयों से अपीलों के संबंध बनाए गए नियमों से भिन्न हो सकेंगे।

(4) यदि हर मजेस्टी किसी समय ग्रेट सील के अधीन कमीशन द्वारा ऐसे निदेश करती है, तो नावधिकरण स्वहस्ताक्षरित लेख द्वारा और नावधिकरण के कार्यालय की मुद्रा द्वारा इस धारा के अधीन किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में स्थापित किसी उप नावधिकरण न्यायालय को समाप्त कर सकेगी और ऐसी समाप्ति पर उस कब्जाधीन क्षेत्र में किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी की अधिकारिता, जो पहले निलंबित कर दी थी, पुनर्जीवित की जाएगी।

10. **उप एडमिरल की नियुक्ति करने की शक्ति**—इस अधिनियम की कोई बात किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र या उसमें के किसी स्थान में और उसके लिए उप एडमिरल नियुक्त करने की किसी शक्ति को प्रभावित नहीं करेगी ; और जब कभी किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र या उस में के किसी स्थान में कोई औपचारिक नियुक्त उप एडमिरल नहीं है तो कब्जाधीन क्षेत्र का गवर्नर उसका पदेन उप एडमिरल होगा।

11. **चैनल आइलैंड और अन्य कब्जाधीन क्षेत्र का अपवाद**—(1) कालोनियल कोर्टस आफ एडमिरल्टी के संबंध में इस अधिनियम के उपबंध चैनल आइलैंड को लागू नहीं होंगे।

(2) सपरिषद् क्वीन के लिए किसी ब्रिटिश विधान मंडल के संबंध में आदेश द्वारा यह घोषित करना विधिपूर्ण होगा कि इस अधिनियम द्वारा कालोनियल कोर्टस आफ एडमिरल्टी को प्रदत्त अधिकारिता ऐसे कब्जाधीन क्षेत्र के किसी न्यायालय में निहित नहीं होगी या आदेश में विनिर्दिष्ट आंशिक या सीमित विस्तार तक ही निहित होगी।

12. **विदेशी अधिकारिता वाले अधिनियमों के अधीन न्यायालयों को अधिनियम का लागू होना**.—सपरिषद् क्वीन की हर मजेस्टी के लिए आदेश द्वारा यह निदेश देना विधिपूर्ण होगा कि यह अधिनियम, हर मजेस्टी के डोमिनियनों के बाहर किसी स्थान में, जो आदेश में नामित है, अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए हर मजेस्टी द्वारा स्थापित किसी न्यायालय को आदेश में अन्तर्विष्ट शर्तों, अपवादों और परिसीमाओं (यदि कोई हों) के अधीन रहते हुए, लागू होगा, मानो वह न्यायालय एक कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी था और ऐसे लागू करने को प्रभावी करने के लिए उपबंध करना भी विधिपूर्ण होगा।

13. **दास व्यापार के मामलों में प्रक्रिया के बारे में नियम**.—(1) सपरिषद् क्वीन की हर मजेस्टी के लिए आदेश द्वारा दास व्यापार से संबंधित विषयों में कालोनियल कोर्टस आफ एडमिरल्टी और उप नावधिकरण न्यायालयों की अपनी अधिकारिता के प्रयोग में अनुपालन की जाने वाली पद्धति और प्रक्रिया (जिसके अंतर्गत फीस और खर्चे भी हैं) और उन से प्राप्त विवरणियों, तथा स्लेव ट्रेड (ईस्ट अफ्रीकन कोर्टस) ऐक्टस, 1873 और 1879 द्वारा यथा परिभाषित ईस्ट अफ्रीकन कोर्टस में अनुपालन की जाने वाली पद्धति और प्रक्रिया (जिसके अन्तर्गत फीस और खर्चे भी हैं) और उनसे प्राप्त विवरणियों के बारे में नियम बनाना विधिपूर्ण होगा।

(2) किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी या उप नावधिकरण न्यायालय में तत्समय प्रवृत्त न्यायालय के नियम, उसको छोड़कर, जब वे ऐसे सपरिषद् आदेश से असंगत हैं, जहां तक लागू हों, दास व्यापार से संबंधित विषयों में ऐसे न्यायालयों में कार्यवाहियों को विस्तारित होंगे।

(3) इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के प्रयोग में ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्रों में न्यायालयों से सपरिषद् हर मजेस्टी को अपीलों के बारे में इस अधिनियम के उपबंध, स्लेव ट्रेड (ईस्ट अफ्रीकन कोर्टस) ऐक्टस, 1873 और 1879 के अधीन अधिकारिता के प्रयोग में किसी ईस्ट अफ्रीकन कोर्ट के निर्णयों से की गई या की गई समझी गई अपीलों को आवश्यक रूपांतरणों के साथ लागू होंगे।

14. **सपरिषद् आदेश**.—सपरिषद् हर मजेस्टी के लिए इस अधिनियम द्वारा प्राधिकृत प्रयोजनों के लिए समय-समय पर आदेश करना और ऐसे आदेशों को विखंडित और फेरफारित करना विधिपूर्ण होगा, और ऐसे प्रत्येक आदेश का, जब वह प्रवृत्त हो, इस प्रकार प्रभाव होगा मानो वह इस अधिनियम का भाग हो।

15. **निर्वचन**— इस अधिनियम के अर्थान्वयन में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,—

किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के संबंध में "प्रतिनिधि विधान मंडल पद से ऐसा विधान मंडल अभिप्रेत है जिसको एक ऐसा विधायी निकाय है जिसका कम से कम आधा ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के निवासियों द्वारा निर्वाचित किया गया हो।

"असीमित सिविल अधिकारिता" पद से विवाधक की विषय वस्तु के मूल्य के बारे में या उस रकम के बारे में, जो दावा की जा सकेगी वसूल की जा सकेगी, असीमित सिविल अधिकारिता अभिप्रेत है।

"निर्णय" पद के अन्तर्गत कोई डिक्री, आदेश और दंडादेश है। "अपील" पद से कोई अपील, पुनः सुनवाई या पुनर्विलोकन अभिप्रेत है ; और "स्थानीय अपील" पद से सपरिषद् हर मजेस्टी से अवर किसी न्यायालय को कोई अपील अभिप्रेत है।

"उपनिवेशिक विधि" पद से कोई ऐसा अधिनियम, अध्यादेश या अन्य विधि अभिप्रेत है, जिसका किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में विधायी अधिनियमिति का बल है और जो इम्पीरियल पार्लियामेंट या सपरिषद् हर मजेस्टी से भिन्न ऐसे किसी प्राधिकारी द्वारा बनाया गया है, जो ऐसे कब्जाधीन क्षेत्र के लिए विधियां बनाने के लिए सक्षम है।

16. अधिनियम का प्रारंभ—(1) यह अधिनियम, इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय, प्रत्येक ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में अठारह सौ इक्यानवे की जुलाई के प्रथम दिन को प्रवृत्त होगा :

परन्तु —

(क) यह अधिनियम, इस अधिनियम की पहली अनुसूची में नामित ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्रों में से किसी में तब तक प्रवृत्त नहीं होगा, जब तक हर मजेस्टी सपरिषद् आदेश द्वारा इस प्रकार निदेश न दे और जब तक ऐसे आदेश में उस निमित्त दिन नामित न किया गया हो; और

(ख) यदि ऊपर उल्लिखित किसी दिन के पूर्व किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी के लिए न्यायालय के नियम सपरिषद् हर मजेस्टी द्वारा अनुमोदित किए जा चुके हैं, तो यह अधिनियम उस कब्जाधीन क्षेत्र में उसके गर्वनर द्वारा उद्घोषित किए जा सकेंगे और ऐसी उद्घोषणा, उस उद्घोषणा में नामित दिन को प्रवृत्त होगी।

(2) उस दिन को, जिसको यह अधिनियम किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में प्रवृत्त होगा उस ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के बारे में इस अधिनियम का प्रारंभ समझा जाएगा।

(3) यदि किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में इस अधिनियम के प्रारंभ पर न्यायालय के नियम इस अधिनियम के अनुसरण में हर मजेस्टी द्वारा अनुमोदित नहीं किए गए हैं तो वाइस एडमिरल्टी कोर्टस ऐक्ट, 1961 के अधीन ऐसे प्रारंभ पर प्रवृत्त नियम, और भारत में संबंधित उन नावधिकरण न्यायालयों को विनियमित करने के लिए ऐसे प्रारंभ पर नियम, जिनके अंतर्गत हर मजेस्टी के पोतों की ओर से संस्थित कार्यवाहियों के प्रतिनिर्देश से बनाए गए कोई नियम भी हैं, जहां तक लागू हों, ऐसे कब्जाधीन क्षेत्र के कालोनियल कोर्ट या नावधिकरण न्यायालयों में, और इस अधिनियम के अधीन स्थापित किसी उप नावधिकरण न्यायालय में प्रवृत्त होंगे और इस अधिनियम के अधीन न्यायालय के नियमों के रूप में उस कब्जाधीन क्षेत्र में तदनुसार विखंडित और फेरफारित किए जा सकेंगे; और ऐसे नियमों के अधीन संदेय सभी फीस ऐसी रीति में दी जा सकेगी, जैसी उपनिवेशिक न्यायालय निदेशित करे, किन्तु इस प्रकार कि ऐसी प्रत्येक फीस की रकम, उतनी यथासाध्य निकटतम, जितनी व्यवहार्य हो, ऐसे अधिकारी या व्यक्ति को संदत्त की जाएगी जो, यदि यह अधिनियम पारित न किया गया होता तो उसी प्रकार के कारबार के संबंध में उसे प्राप्त करने के लिए हकदार होता। जहां तक कोई ऐसे नियम लागू नहीं होते हैं या उनका विस्तार नहीं है, किसी न्यायालय द्वारा अपनी साधारण सिविल अधिकारिता के प्रयोग के लिए न्यायालय के नियम, इस अधिनियम द्वारा प्रदत्त अधिकारिता के उसी न्यायालय द्वारा प्रयोग करने के लिए नियमों के रूप में प्रभावी होंगे।

(4) इस अधिनियम के पारित किए जाने के पश्चात् किसी भी समय कोई भी उपनिवेशिक विधि पारित की जा सकेगी और कोई भी उपनावधिकरण न्यायालय स्थापित किया जा सकेगा तथा ऐसे न्यायालय में निहित अधिकारिता, किन्तु ऐसी कोई विधि, स्थापित या विधान, इस अधिनियम के प्रारंभ तक प्रभावी नहीं होगी।

17. उप नावधिकरण न्यायालयों की समाप्ति—किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में इस अधिनियम के प्रारंभ पर, किन्तु इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए उस कब्जाधीन क्षेत्र में प्रत्येक उन नावधिकरण न्यायालय निम्नलिखित के अधीन रहते हुए समाप्त कर दिया जाएगा :

(1) ऐसे उप नावधिकरण न्यायालय के सभी निर्णय निष्पादित किए जाएंगे और उसी रीति में उनसे अपील की जा सकेगी मानो यह अधिनियम पारित नहीं किया गया था और इस अधिनियम के प्रारंभ पर लम्बित किसी उप नावधिकरण से सभी

अपीलों की सुनवाई की जाएगी और उन्हें अवधारित किया जाएगा तथा उन पर निर्णय यथासाध्य निकटतम उसी रीति में निष्पादित किए जाएंगे मानो यह अधिनियम पारित नहीं हुआ था ;

(2) इस अधिनियम के प्रारंभ पर किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में उप नावधिकरण न्यायालय में लम्बित सभी कार्यवाहियां, इस अधिनियम द्वारा किसी अधिनियमिति के निरसन के होते हुए भी, न्यायालय के नियमों द्वारा निदेशित रीति में कब्जाधीन क्षेत्र के किसी कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी में, और, जहां तक ऐसा कोई नियम विस्तारित नहीं होता है, यथाशक्य निकटतम उसी रीति में, जारी रखी जाएंगी मानो वे ऐसे न्यायालय में मूलतः आरंभ हुई थीं ;

(3) जहां कोई ऐसा पद धारण करने वाला कोई व्यक्ति, जो किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में किसी ऐसे उप नावधिकरण न्यायालय में, चाहे वह न्यायाधीश, रजिस्ट्रार या मार्शल का अथवा कोई अन्य पद हो, ऐसे न्यायालय की समाप्ति के परिणामस्वरूप कोई धनीय हानि उठाता है, वहां ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र की सरकार ऐसे व्यक्ति की शिकायत पर यह उपबंध करेगी कि ऐसा व्यक्ति अपनी हानि के बारे में वैसे ही कर्तव्यों के जैसे ऐसी समाप्ति के पूर्व थे, पालन के, यदि उक्त सरकार द्वारा अपेक्षित हो, अध्यधीन रहते हुए, भी समुचित प्रतिकर / वेतन की वृद्धि या पूंजी राशि के रूप में या अन्यथा प्राप्त करेगा ;

(4) इस अधिनियम के प्रारंभ पर किसी उप नावधिकरण न्यायालय की या उससे संबंधित सभी पुस्तकें, कागजपत्र, दस्तावेज, कार्यालय फर्नीचर और अन्य चीजें कालोनियल कोर्ट आफ एडमिरल्टी के मुख्य कार्यालय को परिदत्त की जाएगी, जो हर मजेस्टी से किन्हीं निदेशों के अधीन रहते हुए गवर्नर निर्दिष्ट करे ;

(5) जहां किसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र में इस अधिनियम के प्रारंभ पर कोई व्यक्ति इस अधिनियम द्वारा समाप्त किए गए किसी उप नावधिकरण न्यायालय में अधिवक्ता के रूप में कार्य करने के लिए प्राधिकार धारण करता है, वहां ऐसे प्राधिकार का इस अधिनियम के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाले उसी ब्रिटिश कब्जाधीन क्षेत्र के प्रत्येक न्यायालय में वही प्रयोजन होगा मानो ऐसा न्यायालय ऐसे प्राधिकार में उल्लिखित या उसमें निर्दिष्ट न्यायालय था।

उपाबंध V

प्रारूप

भारतीय नावधिकरण अधिनियम, 1987

(1987 का अधिनियम)

नावधिकरण विषयक अधिकारिता, पोतों और पोतों की गिरफ्तारी और अन्य संपत्ति के संबंध में सिविल कार्यवाहियों से संबंधित और उनसे संबद्ध प्रयोजनों के लिए विधि का संशोधन करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के अड़तालीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :—

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और लागू होना**—(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम भारतीय नावधिकरण अधिनियम, 1987 है।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे।

(3) यह केन्द्रीय सरकार द्वारा समय-समय पर इस अधिनियम (नावधिकरण न्यायालय अधिनियम) के अधीन गठित नावधिकरण विषयक न्यायालय को लागू होता है।

2. **परिभाषाएं**—इस अधिनियम में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :

(क) "नावधिकरण न्यायालय" से नावधिकरण न्यायालय के रूप में गठित कोई न्यायालय या भारत में कोई अन्य ऐसा उच्च न्यायालय, जिसमें नावधिकरण अधिकारिता निहित की गई है, अभिप्रेत है;

(ख) "पोत" के अंतर्गत मानव प्राणी की मुख्यतः (जल मार्ग द्वारा) सवारी के लिए या किसी संपत्ति के वहन के लिए बनाया गया कोई जलयान भी है किन्तु चलता जलयान या जलयानों का कोई ऐसा वर्ग जो केन्द्रीय सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचना द्वारा अधिसूचित किया जाए, शामिल नहीं है।

अध्याय 2

नावधिकरण अधिकारिता और पोतों से संबंधित अन्य उपाबन्ध

3. **न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता**—(1) न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता निम्नवत् होगी, अर्थात् निम्नलिखित में से किसी प्रश्न या दावा की सुनवाई और उसके अवधारण की अधिकारिता :

(क) किसी पोत के कब्जे या स्वामित्व का या उसमें शेयर के स्वामित्व का कोई दावा ;

(ख) किसी पोत के सहस्वामियों के बीच, उस पोत के कब्जे, नियोजन या उपार्जन के संबंध में उद्भूत कोई प्रश्न;

(ग) किसी पोत या उसमें किसी शेयर के बंधक या उस पर भार की बाबत कोई दावा;

(घ) किसी पोत द्वारा किए गए नुकसान के लिए कोई दावा, जिसके अंतर्गत वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, के भाग 1ख के अधीन तेल प्रदूषण नुकसानी के लिए सिविल दायित्व भी है;

(ङ) किसी पोत द्वारा प्राप्त किए गए नुकसान के लिए कोई दावा ;

(च) किसी पोत में या उसके परिधान या उपस्कर में किसी खराबी के परिणामस्वरूप या स्वामियों, चार्टरकर्ताओं या उन व्यक्तियों के जो पोत का कब्जा या नियंत्रण रखते हैं या उसके मास्टर या कर्मीदल के या किसी अन्य व्यक्ति के जिसके सदोष कृत्यों, उपेक्षाओं या त्रुटियों के लिए किसी पोत के स्वामी, चार्टरकर्ता या कब्जा अथवा नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति उत्तरदायी हैं, सदोष कृत्य, उपेक्षा या त्रुटि के परिणामस्वरूप, जो नौवहन या पोत के प्रबंध में, पोत पर या उसमें या उससे माल के लदान वहन या निर्वहन में या पोत पर या उसमें या उससे व्यक्तियों के आरोहण, परिवहन या अवरोहण में उपेक्षा या त्रुटि का कृत्य है, हुई प्राण की हानि या दैहिक क्षति के लिए कोई दावा ;

(छ) किसी पोत पर वहन किए गए माल की हानि या नुकसान के लिए कोई दावा ;

(ज) किसी पोत में माल के वहन या किसी पोत के उपयोग या भाड़े से संबंधित किसी करार से उद्भूत कोई दावा ;

(झ) प्राण, जलयान, स्थौरा संपत्ति, उपस्कर या ध्वस्तपोत सामग्री के उद्धारण या उनके संरक्षण की प्रकृति का कोई दावा ;

(ञ) किसी पोत या वायुयान की बाबत अनुकर्षण की प्रकृति का कोई दावा ;

(ट) किसी पोत या वायुयान की बाबत पत्तन नयन की प्रकृति का कोई दावा ;

(ठ) किसी पोत के प्रचालन या अनुरक्षण के लिए उसको आपूर्त माल, सामग्री, बंकर या अन्य आवश्यक वस्तुओं की बाबत कोई दावा ;

(ड) किसी पोत के सन्निर्माण, मरम्मत या उपस्कर की, या भारतीय पत्तन अधिनियम, 1908 या महापत्तन न्याय अधिनियम, 1963 के अधीन पत्तन प्राधिकारियों के किन्हीं प्रभारों या देयों की बाबत कोई दावा ;

(ढ) किसी पोत मास्टर या कर्मीदल के सदस्य द्वारा मजदूरी के लिए कोई दावा या पोत के मास्टर या कर्मीदल के सदस्य द्वारा या उसकी बाबत ऐसी रकम या संपत्ति के लिए कोई दावा जो किसी विधि के उपबंधों के अधीन मजदूरी के रूप में और उस रीति में जिसमें मजदूरी वसूल की जा सकती है, वसूलनीय है ;

(ण) मास्टर, शिपर, चार्टरकर्ता या अभिकर्ता द्वारा पोत मद्दे किए गए वितरण की बाबत कोई दावा ;

(त) किसी ऐसे कृत्य से, जो साधारण औसत कृत्य है या जिसके ऐसा होने का दावा किया जाता है, उत्पन्न होने वाला कोई दावा;

(थ) पोतबन्ध से उत्पन्न होने वाला कोई दावा ;

(द) किसी पोत को, उसके प्रचालन या अनुरक्षण के लिए प्रदत्त सेवाओं के लिए कोई दावा ;

(ध) किसी पोत के या ऐसे माल के जो पोत में वहन किया जा रहा है या वहन किया गया है या जिसके वहन करने का प्रयास किया जा रहा है, समपहरण या जब्ती के लिए, या किसी पोत के या किसी ऐसे माल के अधिग्रहण के पश्चात् पुनर्स्थापन के लिए कोई दावा; और

(द) पोत स्वामियों या अन्य व्यक्तियों द्वारा समय-समय पर यथा संशोधित वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 (1958 का 44) भाग 10क और भाग 10ख के अधीन पोत या अन्य संपत्ति के संबंध में उनके दायित्व की रकम के परिसीमन के लिए कोई कार्यवाई, और साथ ही कोई अन्य अधिकारिता जो एडमिरैल्टी ऐक्ट, 1841 तथा 1961 और कोलोनियल कोर्ट्स आफ (इंडिया) ऐक्ट, 1891 के अधीन, नावधिकरण अधिकारिता युक्त न्यायालय होने के कारण या तो मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास स्थित हाई कोर्ट आफ एडमिरल्टी में निहित थी और मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास स्थित उच्च न्यायालयों में निहित कोई अन्य नावधिकरण अधिकारिता ।

(2) इस धारा की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन नावधिकरण न्यायालयों की अधिकारिता में किसी पोत के संबंध में पक्षकारों के बीच किसी बकाया और अनसुलझी रकम को सुलझाने की, और यह निदेश देने की कि पोत या उसका कोई शेयर विक्रीत किया जाएगा, और ऐसा आदेश करने की, जो न्यायालय ठीक समझे, शक्ति सम्मिलित है ।

(3) इस धारा के पूर्ववर्ती उपबंध निम्नलिखित को लागू होते हैं,—

(क) सभी पोतों के संबंध में, चाहे वे भारतीय हों या नहीं, और चाहे रजिस्ट्रीकृत हों या नहीं, और उनके स्वामियों का निवास या अधिवास चाहे कहीं भी हो;

(ख) सभी दावों के संबंध में, चाहे वे कहीं भी उत्पन्न होते हों (जिनके अंतर्गत, स्थोरा या उद्धारण के पोत ध्वंस की दशा में भूमि पर पाए गए स्थोरा या पोत ध्वंस की बाबत दावे भी हैं); और

(ग) जहां तक वे बंधक या प्रभारों से संबद्ध हैं, सभी बंधकों या प्रभारों को, चाहे वे रजिस्ट्रीकृत हों या नहीं, और चाहे विधिक या साम्यापूर्ण हों, जिसमें विदेशी विधि के अधीन सृजित बंधक और प्रभार भी हैं।

4. नावधिकरण अधिकारिता के प्रयोग की पद्धति—(1) इस अधिनियम की धारा 5 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का, सभी मामलों में, व्यक्ति बंधी कार्यवाई द्वारा अवलंब लिया जा सकता है ।

(2) इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के पैरा (क) से (ग) तक और पैरा (घ) में उल्लिखित मामलों में, नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का, प्रश्नगत पोत या संपत्ति के विरुद्ध उसकी गिरफ्तारी द्वारा सर्वबंधी कार्यवाई द्वारा अवलंब लिया जा सकता है ।

(3) किसी ऐसे मामले में जिसमें किसी पोत या अन्य संपत्ति पर सामुद्रिक धारणाधिकार या अन्य प्रभार है, जिसके अंतर्गत दावा की गई रकम के लिए बंकर भी है, न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता का प्रश्नगत उस पोत या संपत्ति के विरुद्ध, उसकी गिरफ्तारी द्वारा, सर्वबंधी कार्यवाई द्वारा अवलंब लिया जा सकता है ।

(4) किसी ऐसे दावे की दशा में, जैसा कि इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (1) के पैरा (घ), और पैरा (च) से पैरा (द) तक में उल्लिखित है, जो किसी पोत के संबंध में उत्पन्न होने वाला दावा है, जहां वह व्यक्ति, जो व्यक्ति बंधी किसी कार्यवाई में दावे पर दायी होगा जब वाद हेतुक उत्पन्न हुआ था, पोत का स्वामी, या चार्टरकर्ता था या पोत उसके कब्जे या नियंत्रण में था (चाहे दावा पोत पर सामुद्रिक धारणाधिकार को उत्पन्न करता हो या नहीं) यथापूर्वोक्त निम्नलिखित के विरुद्ध गिरफ्तारी द्वारा, सर्वबंधी कार्यवाई द्वारा विलंब अवलंब ले सकेगा :

(क) उस पोत के, यदि उस समय जब कार्यवाई की जाती है, उस व्यक्ति द्वारा उसमें सभी शेयरों की बाबत फायदाप्रदरूप से स्वामित्वाधीन है या चार्टरकर्ता द्वारा, यदि वह मृत्यु द्वारा किसी चार्टरकर्ता के अधीन है ;

या

(ख) कोई अन्य पोत जो उस समय जब कार्यवाई की जाती है, उस पर उसके सभी शेयरों की बाबत फायदाप्रद रूप से स्वामित्वाधीन है ।

(5) इस धारा के पूर्ववर्ती उपबंधों में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का ऐसे किसी दावे की दशा में, जो इस अधिनियम की धारा 3 की उपधारा (2) के खंड (ड) में उल्लिखित है, सर्वबंधी कार्यवाई द्वारा तब तक अवलंब नहीं लिया जाएगा जब तक कि दावा पूर्णतः या भागतः केवल मजदूरी से संबंधित न हो ।

(6) जहां, नावधिकरण न्यायालय अपनी अधिकारिता के प्रयोग में किसी पोत या संपत्ति का विक्रय किए जाने का आदेश करता है वहां नावधिकरण न्यायालय को, विक्रय के आगमों के हक के बारे में उत्पन्न होने वाले किसी प्रश्न की सुनवाई करने और उसे अवधारित करने का अधिकार होगा ।

(7) इस धारा की उपधारा (4) के प्रयोजनों के लिए यह अवधारित करने में कि क्या कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति बंधी कार्यवाई में किसी दावे पर दायी होगा, यह उपधारणा की जाएगी कि उस व्यक्ति का भारत के भीतर आधारिक निवास या कारबार का स्थान है ।

(8) इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी किसी ऐसे पोत की दशा में, जो भारतीय पोत के रूप में भारत में रजिस्ट्रीकृत है, पोत की गिरफ्तारी द्वारा सर्वबंधी कार्यवाई द्वारा नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का तब तक अवलंब नहीं लिया जाएगा जब तक कि कार्यवाई किए जाने के लिए आशयित पोत के रजिस्ट्रीकृत स्वामियों या मास्टर को लिखित रूप में छह स्पष्ट दिनों की ऐसी सूचना तामील नहीं कर दी जाती है जिसमें वाद हेतुक, और दावे की प्रमात्रा और गिरफ्तारी के लिए न्यायालय को आवेदन की तारीख तथा समय और गिरफ्तारी के बदले नावधिकरण न्यायालय के समाधानप्रद रूप में दावे के लिए प्रतिभूति की व्यवस्था करने के लिए स्वामियों या मास्टर को कहा जाएगा और जहां ऐसी प्रतिभूति की व्यवस्था कर दी जाती है वहां न्यायालय, पोत की गिरफ्तारी किए बिना कार्यवाई करेगा और पोत की गिरफ्तारी का आदेश केवल ऐसी प्रतिभूति की व्यवस्था करने में असफल होने की दशा में किया जाएगा ।

5. व्यक्ति बंधी अधिकारिता —(1) नावधिकरण न्यायालय, किसी ऐसे दावे को प्रवर्तित करने के लिए जिसको यह धारा लागू होती है, तब तक व्यक्ति बंधी कार्यवाई नहीं करेगा जब तक कि—

(क) प्रतिवादी, कार्यवाई के आरंभ पर वस्तुतः और स्वैच्छिकतः भारत में निवास नहीं करता है या कारबार नहीं करता है या व्यक्तिगत रूप से अभिलाभ के लिए कार्य नहीं करता है;

(ख) वादहेतुक, पूर्णतः या भागतः भारत में जिसमें भारत का अंतर्देशीय जल भी है, या भारत के पत्तन की सीमाओं के भीतर उत्पन्न नहीं होता है;

या

(ग) उसी घटना या घटनाओं की श्रृंखला से वादहेतुक उद्भूत नहीं होता है जिसकी कार्यवाही नावधिकरण न्यायालय में चल रही है या उसकी नावधिकरण न्यायालय में सुनवाई की गई है और अवधारित किया गया है ।

(2) नावधिकरण न्यायालय किसी ऐसे दावे को प्रवर्तित करने के लिए, जिसको यह धारा लागू होती है, तब तक व्यक्ति बंधी कार्यवाई नहीं करेगा जब तक कि उसी घटना या घटनाओं की श्रृंखलाओं की बाबत उसी प्रतिवादी के विरुद्ध भारत के बाहर किसी न्यायालय में वादी द्वारा कोई पहले संस्थित कार्यवाही रुक नहीं गई है या अन्यथा समाप्त नहीं हो गई है ।

(3) इस धारा के पूर्ववर्ती उपबंध प्रतिदावों को (जो उसी घटना या घटनाओं की श्रृंखला से उत्पन्न कार्यवाहियों में प्रतिदावे नहीं हैं) वैसे ही लागू होंगे जैसे वे व्यक्ति बंधी कार्रवाई में लागू होते हैं किंतु मानो इस वादी और प्रतिवादी के प्रतिनिर्देश क्रमशः प्रतिदावा में वादी और प्रतिदावा में प्रतिवादी के प्रति निर्देश हों ।

(4) इस धारा के पूर्ववर्ती उपबंध किसी कार्रवाई या प्रतिदावे को लागू नहीं होंगे यदि उसकी प्रतिवादी, नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता मान लेता है या मानने के लिए सहमत हो जाता है ।

(5) इस धारा की उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, नावधिकरण न्यायालय को किसी ऐसे दावे को, जिसको यह धारा लागू होती है, प्रवर्तित करने के लिए व्यक्ति बंधी कार्रवाई करने की अधिकारिता होगी, जब कभी इस धारा की उपधारा (1) के खंड (क) से खंड (ग) तक की किसी शर्त का समाधान हो जाता है और अधिकारिता के बाहर प्रक्रिया की सर्विस से संबंधित न्यायालय के नियम ऐसे उपबंध करेंगे जो नियम निर्माता प्राधिकारी को इस उपधारा के उपबंधों को ध्यान में रखते हुए समुचित प्रतीत होते हों ।

(6) वे दावे जिनको यह धारा लागू होती है, दो पोतों के बीच टक्कर से या एक अथवा दो से अधिक अथवा अधिक पोतों में युक्ति चालन करने से अथवा करने का लोप करने से, या टक्कर विनियमों के भीतर एक अथवा दो से अधिक अथवा अधिक पोतों के पक्ष में अननुपालन से उत्पन्न होने वाले नुकसान प्राण की हानि या दैहिक क्षति के दावे हैं ।

(7) इस धारा में—

"अंतर्देशीय जल" में भारत गणराज्य की राज्यक्षेत्रीय संप्रभुता के भीतर भारत के तट के पार्श्वस्थ समुद्र का कोई भाग सम्मिलित है; "पत्तन" से कोई पत्तन, बंदरगाह नदी मुहाना, आश्रय, डाक, नहर या अन्य स्थान अभिप्रेत है जब तक कि कोई व्यक्ति या व्यक्ति निकाय अधिनियम द्वारा या उसके अधीन, उसमें प्रवेश करने वाले या उसमें सुविधाओं का उपयोग करने वाले पोतों की बाबत प्रभार लेने के लिए सशक्त है; और "पत्तन की सीमाओं" से भारतीय पत्तन अधिनियम या महापत्तन न्यास अधिनियम द्वारा या उसके अधीन यथा नियत उसकी सीमाएं अभिप्रेत हैं; "टक्कर विनियम" से वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम के अधीन बनाए गए विनियम और नियम तथा भारतीय पत्तन अधिनियम, 1963 के अधीन बनाए गए कोई नियम उपविधि और/या विनियम अभिप्रेत हैं ।

6. **मजदूरी के लिए अधिकारिता**—(1) वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 की धारा 146 में अंतर्विष्ट उपबंधों के होते हुए भी नावधिकरण न्यायालय को मजदूरी के लिए कार्रवाई करने की अधिकारिता होगी ।

(2) अधिनियम के इस भाग की कोई भी बात का अर्थ किसी पोत के, जो भारतीय पोत नहीं है, मास्टर या कर्मीदल के सदस्य द्वारा मजदूरी के लिए कोई कार्रवाई करने का न्यायालय की अधिकारिता को सीमित करने वाला नहीं लगाया जाएगा ।

7. (1) जहां किसी व्यक्ति बंधी वाद में, नावधिकरण न्यायालय ने उस संपत्ति का जिस पर कार्रवाई की जानी है, विक्रय किए जाने का आदेश किया है, वहां कोई पक्ष की जिसने उक्त संपत्ति के विरुद्ध या उसके विक्रय आगम के विरुद्ध डिक्री या आदेश प्राप्त कर लिया है या प्राप्त कर लेता है, निर्णय अभिप्राप्त कर लेने के पश्चात् नावधिकरण न्यायालय को उक्त संपत्ति के विक्रय के आगमों के प्रति अधिमान क्रम अवधारित करने के लिए आदेशार्थ, प्रस्ताव की सूचना द्वारा आवेदन कर सकेगा ।

(2) जहां किसी सर्वबंधी वाद में नावधिकरण न्यायालय उस संपत्ति का, जिस पर कार्रवाई की जानी है, विक्रय किए जाने का आदेश करता है, वहां वह और आदेश करेगा कि सूचना एक अन्तरराष्ट्रीय और एक राष्ट्रीय समाचार पत्र को, जैसा कि नावधिकरण

न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, दी जाए कि सर्वबंधी वाद में नावधिकरण न्यायालय के आदेश द्वारा संपत्ति का विक्रय कर दिया गया है, सूचना में वाद संख्या, वाद के पक्षकारों के नाम भी हो, और विक्रय के सकल आगम, उसकी रकम विनिर्दिष्ट करते हुए, नावधिकरण न्यायालय को संदत्त कर दिए गए हैं और उक्त आगम के दावों का अधिमानक्रम, उक्त सूचना के प्रकाशन की तारीख से नब्बे दिन के अवसान के पश्चात् किया जाएगा, और संपत्ति के या उसके विक्रय आगम के प्रति दावा रखने वाले किसी पक्षकार को, न्यायालय को हस्तक्षेप की मंजूरी और नावधिकरण न्यायालय के समक्ष अपना दावा साबित करने के लिए आवेदन करना चाहिए और वाद फाइल करके उस अवधि के अवसान के पूर्व डिक्री अभिप्राप्त कर लेनी चाहिए ।

(3) नावधिकरण न्यायालय उस पक्षकार के आवेदन पर नब्बे दिन की अवधि को बढ़ा सकेगा जिसने उपधारा (2) में यथा उपबंधित न्यायालय के समक्ष या भारत में सक्षम अधिकारिता के किसी अन्य नावधिकरण न्यायालय के समक्ष, संपत्ति या विक्रय के आगम के विरुद्ध डिक्री अभिप्राप्त करने के लिए कार्यवाही संस्थित की है और न्यायालय उक्त वाद या उसमें फाइल की गई किसी अपील के निपटान के पश्चात् तीस दिन तक उक्त विक्रय आगम का वितरण और/या उसके अधिमान का अवधारण नहीं करेगा ।

(4) ऊपर उपधारा (3) में जो कथित है उसके होते हुए भी नावधिकरण न्यायालय ऐसे पक्षकार के आवेदन पर अधिमान अवधारित कर सकेगा और विक्रय आगम में से संदाय का निदेश दे सकेगा जिसने संपत्ति या विक्रय आगम के विरुद्ध कोई डिक्री अभिप्राप्त कर ली है यदि नावधिकरण न्यायालय की यह राय है कि आवेदक का दावा किसी भी दशा में उस दावे के अधिमान में है जिसके लिए वाद संस्थित किया गया है, परन्तु यह कि नावधिकरण न्यायालय अधिमान के अवधारण और विक्रय आगम से वितरण का निदेश देने के पूर्व उन सभी पक्षकारों को सुनेगा जिन्होंने दावे किए हैं और 90 दिन की विहित अवधि के भीतर संपत्ति या विक्रय आगम के विरुद्ध वाद फाइल किए हैं ।

8. पोत के विक्रय का अधिकार निहित करना—किसी नावधिकरण न्यायालय द्वारा पोत के विक्रय पर, पोत, सभी विल्लंगमों से मुक्त जिनमें बंधक, प्रभार, आडमाल और सामुद्रिक धारणाधिकार भी है, क्रेता में निहित हो जाएगा ।

9. **नियम बनाने की शक्ति**—केन्द्रीय सरकार, इस अधिनियम के अधीन नावधिकरण न्यायालयों के समक्ष लाए गए मामलों में प्रक्रिया और प्रथा के विनियमन के लिए नियम बना सकेगी ।

10. **सामुद्रिक धारणाधिकार**—(1) सामुद्रिक धारणाधिकार किसी पोत या संपत्ति पर निम्नलिखित दशाओं में लागू होंगे और ऐसे सामुद्रिक धारणाधिकार के प्रोदभवन की तारीख वह होगी जिसको वह संक्रिया हुई थी जिससे उक्त दावा उत्पन्न हुआ था:

(क) प्राण, पोत या संपत्ति के उद्धारण के लिए दावा;

(ख) पोत के मास्टर या कर्मी दल के सदस्य को पोत पर उनके नियोजन की बाबत देय मजदूरी और अन्य राशि;

(ग) पत्तन और नहर तथा अन्य जलमार्ग देय और पत्तन नयन देय;

(घ) पोत के प्रचालन के प्रत्यक्ष संबंध में प्राण की हानि या दैहिक क्षति;

(ङ) साधारण औसत के अभिदाय के लिए दावे;

(च) पोत पर वहन किए गए स्थोरा, आधान और यात्री चीजवस्त को हुई हानि या नुकसानी से भिन्न, पोत के प्रचालन द्वारा कारित शारीरिक हानि या नुकसानी से उत्पन्न होने वाले अपकृत्य पर आधारित दावा ।

(2) सामुद्रिक धारणाधिकार उस तारीख से एक वर्ष की अवधि की समाप्ति पर पर्यवसित हो जाएगा जिस तारीख को संपत्ति पर धारणाधिकार लगा था, परन्तु परिसीमन विधि द्वारा अनवरुद्ध दावा, यदि कोई है, व्यक्तिबंधी कार्रवाई द्वारा प्रवर्तित किया जा सकेगा । एक वर्ष की इस अवधि को आगे बढ़ाया जाएगा यदि धारणाधिकार का दावेदार, इसके नियंत्रण से परे कारणों से परे जलयान के विरुद्ध धारणाधिकार के प्रवर्तन की कार्रवाई आरंभ करने में असमर्थ है ।

11. दावों का अधिमान क्रम—(1) नावधिकरण कार्रवाई में पारस्परिक अधिमान अवधारण के लिए दावा का क्रम निम्नवत् होगा :

(क) वह दावा जहां किसी पोत या अन्य संपत्ति पर जिसमें बंकर भी है, जिसके विरुद्ध कार्रवाई की जानी है, सामुद्रिक धारणाधिकार है ;

(ख) पोत या अन्य संपत्ति पर जिसके विरुद्ध कार्रवाई की जानी है बन्धक और प्रभार;

(ग) सभी अन्य दावे ।

(2) ऊपर खंड 1(क) में पारस्परिक दावों के मध्य अधिमान निम्नवत् होगा :

(क) प्राण, पोत या संपत्ति का उद्धारण अन्य उद्धारणों पर अधिमानी होगा ;

(ख) पोत के मास्टर या कर्मिदल के सदस्यों को पोत में उनके नियोजन की बाबत चार मास से अनधिक की मजदूरी और देय अन्य राशियां ;

(ग) पत्तन, नहरें और अन्य जलमार्ग देय तथा पत्तन नयन देय ;

(घ) पोत के मास्टर या कर्मिदल के सदस्यों को ऊपर खंड के अधीन संदत्त रकम हटाने के पश्चात् पोत पर उनके नियोजन की बाबत देय मजदूरी और अन्य राशियों का अतिशेष ;

(ङ) (i) पोत के प्रचालन के प्रत्यक्ष संबंध में प्राण की हानि या दैहिक क्षति;

(ii) साधारण औसत के लिए अभिदाय का दावा;

(iii) किसी पोत पर वहन किए गए स्थोरा, आधान और यात्री जीवनवस्तु से भिन्न पोत के प्रचालन द्वारा कारित शारीरिक नुकसान या नुकसानी से उत्पन्न होने वाली अपकृत्य पर आधारित दावा ।

(iv) पोत बन्ध ।

(3) (i) अधिमान क्रम में पूर्व दावा पश्चात्‌वर्ती दावे को अपवर्जित करेगा ।

(ii) यदि अधिमान के प्रत्येक प्रवर्ग में एक से अधिक दावे हैं तो वे उसी क्रम में होंगे ।

(iii) विभिन्न उद्धारणों के लिए दावे समय के प्रतिलोम क्रम में होंगे जब उससे दावा उद्‌भूत हुआ हो ।

(iv) उद्धारण, पत्तन, देय, मजदूरी और साधारण औसत की प्रकृति के दावे ऊपर खंड (घ) (ङ) में उल्लिखित अन्य उन सभी दावों पर अधिमानी होंगे जो उस समय से पूर्व पोत से संबद्ध हैं जब उक्त दावों को उत्पन्न करने वाले प्रचालन किए गए थे ।

12. इस अधिनियम के अधीन सभी दावों में उस पोत की राष्ट्रिकता जिसके विरुद्ध कार्रवाई की जानी है, वाद पत्र में बताई जाएगी और यदि पोत कोई विदेशी पोत है तो वाद की सूचना या संस्थिति उस राज्य के काउंसेल को दी जाएगी जिसका वह पोत है, यदि कोई उस नगर में निवास करता है जहां नावधिकरण न्यायालय अवस्थित है । ऐसी सूचना या कथन की तामील का विवरण कि ऐसा कोई काउंसेल उस नगर में उपस्थित नहीं है, पोत की गिरफ्तारी के लिए किसी आवेदन के समर्थन में शपथपत्र में दी जाएगी । यदि काउन्सेल पर कोई सूचना तामील की जाती है तो उक्त सूचना की एक प्रति शपथपत्र के साथ संलग्न की जाएगी ।

उपाबंध VI

प्रारूप

नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिनियम, 1987

उद्देशिका

यह पोतों और किसी पोत और अन्य संपत्ति की गिरफ्तारी से संबंधित नावधिकरण विषयक न्यायालयों का गठन करने और उससे संबंधित प्रयोजनों के लिए और उसके लिए विशेष न्यायालय स्थापित करने के लिए अधिनियम है ।

भारत गणराज्य के अड़तीसवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :

1. इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम "भारतीय नावधिकरण विषयक न्यायालय अधिनियम, 1987" है ।

2. यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार अपने राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

3. केन्द्रीय सरकार मुम्बई, कलकत्ता, मद्रास और कोचीन नगरों में नावधिकरण विषयक न्यायालयों का गठन और स्थापना करेगी और सभी नावधिकरण विषयक न्यायालयों को भारत के संपूर्ण राज्यक्षेत्र में तथा भारत के संपूर्ण तटक्षेत्र पर तथा जिसके अंतर्गत अंतर्वर्ती तथा राज्यक्षेत्रीय जल क्षेत्र है, अधिकारिता होगी ।

4. नावधिकरण विषयक न्यायालय को भारतीय नावधिकरण विषयक अधिनियम, 1987 के तथा तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन उद्‌भूत होने वाले सभी विषयों के संबंध में अनन्य अधिकारिता का प्रयोग करने की अधिकारिता होगी ।

5. नावधिकरण विषयक न्यायालय की अध्यक्षता एक न्यायाधीश करेगा और केन्द्रीय सरकार ऐसी संख्या में न्यायपीठों का गठन करने के लिए सशक्त होगी जो वह ऐसे दावों की, जो नावधिकरण विषयक अधिकारिता की परिभाषा के अंतर्गत आते हैं सुनवाई के लिए धारा 3 में निर्दिष्ट प्रत्येक नगर के लिए उचित समझे और जैसा केन्द्रीय सरकार को इस प्रकार करना आवश्यक प्रतीत हो ।

6. नावधिकरण न्यायाधीश की नियुक्ति ऐसे व्यक्तियों में से की जाएगी जिनके पास ऐसी आवश्यक अर्हताएं होंगी जो किसी राज्य के उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की नियुक्ति के लिए अपेक्षित हैं और भारत के राष्ट्रपति द्वारा उसी रीति में नियुक्त किया जाएगा जैसे किसी राज्य के उच्च न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जाता है परन्तु ऐसी नियुक्ति के लिए भारत के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श किया जाएगा ।

7. नावधिकरण न्यायधीश को लागू वेतन, परिलब्धियां और नयाचार वही होंगे जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश के होते हैं।

8. केन्द्रीय सरकार मुम्बई में एक नावधिकरण अपील न्यायालय का गठन करेगी और अपील न्यायालय की अध्यक्षता दो न्यायाधीश करेंगे । जो नावधिकरण न्यायालयों के निर्णय के विरुद्ध अपीलों की सुनवाई करेंगे ।

9. नावधिकरण न्यायालय भारत के उच्चतम न्यायालय के साधारण अधीक्षण के अध्यधीन होंगे ।

10. इस अधिनियम में के उपबंधों का इसके प्रवर्त्तन में आने से पूर्व उद्भूत होने वाले वाद हेतुक की बाबत प्रभाव होगा और नावधिकरण विषयक अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी उच्च न्यायालय में लंबित सभी कार्यवाहियां इस अधिनियम के अधीन गठित निकटतम न्यायालय को स्थानांतरित हो जाएंगी और यह न्यायालय सभी मामलों का निपटारा उस समय प्रवृत्त विधि के उपबंधों के अनुसार करेगा जब वाद हेतुक उद्भुत हुआ ।

11. नावधिकरण न्यायालय के समक्ष वाद एक वाद पत्र द्वारा प्रारंभ होगा जो सिविल प्रक्रिया संहिता, के उपबंधों के अनुसार हस्ताक्षरित और सत्यापित होगा ।

12. केंद्रीय सरकार नावधिकरण न्यायालयों में पद्धति और प्रक्रिया का विनियम करने के लिए या किसी अन्य विषय के लिए जिसके अंतर्गत इस अधिनियम के अधीन न्यायालय फीस, पंडित और अन्य प्रभारों का संदाय है, नियम और विनियम बना सकेगी।

13. नावधिकरण न्यायालय आदेश या निर्णय से व्यथित व्यक्ति नावधिकरण अपील न्यायालय को अपील कर सकता है ।

14. तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में जो कुछ कथित है उसके होते हुए भी नावधिकरण अपील न्यायालय के किसी आदेश के विरुद्ध कोई अपील या पुनरीक्षण किसी न्यायालय को नहीं होगा परन्तु भारत के संविधान के अनुच्छेद 132 के अधीन भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा विशेष इजाजत मंजूर करने के अधीन रहते हुए विधि अधिकारिता या राष्ट्रीय अथवा अंतरराष्ट्रीय महत्व के किसी अन्य प्रश्न पर कोई अपील भारत के उच्चतम न्यायालय को की जा सकेगी ।

15. सिविल प्रक्रिया संहिता के उपबंध नावधिकरण न्यायालय के समक्ष सभी कार्यवाहियों को लागू होंगे जहां तक वे इसके या नावधिकरण अधिनियम, 1987 या इन अधिनियमों के अधीन बनाए गए विषयों में असंगत या उसके प्रतिकूल नहीं हैं।

16. केन्द्रीय सरकार नावधिकरण न्यायालयों और अपील न्यायालयों में निर्धारक के रूप में सहायता करने के लिए मुम्बई, मद्रास, कलकत्ता और कोचीन नगरों में प्रत्येक नावधिकरण न्यायालय के लिए राजपत्र में निर्धारकों की एक सूची प्रकाशित करेगी जिसमें ऐसे 10 व्यक्तियों के नाम होंगे जिन्हें नावधिकरण और समुद्री मामलों में विशेष अर्हताएं और अनुभव हैं ।

17. नावधिकरण न्यायालय के समक्ष किसी कार्यवाही में चाहे उसके मूल या अपील या अधिकारिता में हो न्यायालय वाद के किसी पक्षकार के अनुरोध पर उसकी सहायता के लिए उसके निर्धारकों को ऐसी रीति में जो वह निदेश दे या जो नियमों द्वारा विहित किया जाए निर्धारकों की सूची में से दो सक्षम निर्धारकों को आहूत करेगी और ऐसे निर्धारक तदनुसार न्यायालय में उपस्थित होकर सहायता करेंगे । ऐसा प्रत्येक निर्धारक अपनी उपस्थिति के लिए ऐसी फीस जो नियमों द्वारा विहित की जाए, ऐसे पक्षकार द्वारा प्राप्त करेगा जिसे संदाय करने के लिए न्यायालय निदेश दे।

18. निर्धारकों की नियुक्ति किसी पक्षकार को विशेषज्ञ साक्षी की परीक्षा करने से वर्जित नहीं करेगी ।

19. मुम्बई, मद्रास और कलकत्ता के न्यायालयों के लिए तारीख 28 दिसंबर, 1865 के लेटर्स पेटेंट के खंड 32 के उपबंध इसके द्वारा निरसित किए जाते हैं।

उपाबंध VII

भारत सरकार

भूतल परिवहन मंत्रालय

(पोत परिवहन खंड)

सं० एस० आर०--10011/10/86-एम ए

नई दिल्ली,
3 दिसम्बर, 1986

सेवा में,

महानिदेशक, पोत परिवहन,
"जहाज भवन",
वालचन्द हीराचन्द मार्ग
मुम्बई-400 001

विषय : समुद्री विधि और नावधिकरण अधिकारिता के पुनर्विलोकन के संबंध में समिति की स्थापना ।

महोदय,

भारत की समुद्री विधि और नावधिकरण अधिकारिता को अद्यतन करने और उद्योग की आवश्यकताओं के प्रति अधिक उत्तरदायी बनाने तथा विवादों के दक्ष और शीघ्र निपटारे के लिए इसे अधिक साधक बनाने के लिए साधारणतः पोत परिवहन उद्योग, जिसके अंतर्गत पोत परिवहन अधिकर्ता, समुद्र यात्री समुदाय, पोतवणिक, आदि हैं, द्वारा अभिव्यक्त आवश्यकता को देखते हुए, उद्योहस्ताक्षरकर्ता को यह कहने का निदेश हुआ है कि सरकार ने इस प्रयोजन के लिए एक समिति निम्नलिखित रचना वाली स्थापित करने का विनिश्चय किया है :

1. श्री प्रवीण सिंह महानिदेशक, पोत परिवहन	अध्यक्ष
2. श्री के०सी० सिद्धवा, वरिष्ठ केन्द्रीय सरकार अधिवक्ता, विधि न्याय और कंपनी कार्य मंत्रालय, मुम्बई	सदस्य
3. डा०एस०एन० संकलेचा, आई०एच०एस०ए०, मुम्बई	सदस्य
4. श्री एच०एन० फोतेदार प्रबंध निदेशक, भारतीय पत्तन एसोसिएशन, नई दिल्ली	सदस्य
5. श्री एस० वेंकटेश्वरन, अधिवक्ता, उच्च न्यायालय, मुम्बई	सदस्य
6. डा० लियो बर्नेस, महा सचिव एन यू एस आई, मुम्बई	सदस्य
7. श्री बी एस भैसनिया, मुल्ला एंड मुल्ला एंड क्रैगी, ब्लंट एंड केरो, मुम्बई	सदस्य
8. श्री सी एम शेटी, उप महानिदेशक, पोत परिवहन, मुम्बई	सदस्य-सचिव

2. उपर्युक्त समिति को सौंपे गए कृत्य निम्नलिखित होंगे :

(क) नावधिकरण अधिकारिता, जिसके अंतर्गत अन्य देशों में की गई प्रगति और इस अधिकारिता पर अंगीकार किए गए अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय है, से संबंधित विभिन्न पहलुओं का अध्ययन;

(ख) यह सिफारिश करना कि अद्यतन अपेक्षित समुद्री विधान कौन सा पुनः स्थापित किया जा सकता है, जो कथनों, उद्देश्यों और कारणों को स्पष्ट करने वाली रिपोर्ट द्वारा समर्थित हो; और

(ग) नावधिकरण और समुद्रीय विवादों के बारे में अधिक प्रभावी रूप से कार्रवाई करने के प्रयोजन के लिए पृथक् नावधिकरण अधिकारिता/ नावधिकरण न्यायालय/ अधिकरण स्थापित करने के लिए विनिर्दिष्ट सुझाव देना।

3. समिति किन्हीं ऐसे व्यक्तियों या हितों को, जो आवश्यक हों, सहयोजित कर सकेगी और अपने कार्य को अंतिम रूप देने के प्रयोजन के लिए विभिन्न हितों/संगठनों से संपर्क या उनसे परामर्श कर सकेगी ।

4. उपर्युक्त समिति तत्काल प्रभाव से मुम्बई में कार्य करेगी और छह मास के भीतर अपनी रिपोर्ट सरकार को प्रस्तुत करेगी ।

5. समिति के अधिवेशनों के संबंध में यात्रा और ठहरने के बारे में अशासकीय सदस्यों के व्ययों की पूर्ति उनके संबंधित संगठनों द्वारा की जाएगी शासकीय सदस्यों के उसी प्रकार के व्ययों की पूर्ति उनके संबंधित विभागों द्वारा की जाएगी ।

6. पोत परिवहन महानिदेशक का कार्यालय समिति को सचिवीय सहायता की व्यवस्था करेगा ।

भवदीय,

ह्स्ता/–

(डी०ओ० सूद)

अवर सचिव, भारत सरकार

उपाबंध VIII

नावधिकरण अधिनियम, 199—

(199— का अधिनियम संख्यांक —)

पोतों, उनकी गिरफ्तारी, निरोध और विक्रय और उससे संबंधित विषयों से संबंधित विधिक कार्यवाही के भारत में नावधिकरण न्यायालयों से संबंधित विधि का समेकन और संशोधन करने के लिए अधिनियम।

भारत गणराज्य के — वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम और प्रारंभ**—(1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम "नावधिकरण अधिनियम 199—" है ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना द्वारा नियत करे ।

2. **परिभाषा**—इस अधिनियम में, जब तक संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो :

(क) "प्रभार" से प्रकाश शुल्क, स्थानीय प्रकाश शुल्क और प्रकाशस्तंभों, बोय या बीकन की बाबत किसी अन्य प्रभार और पत्तन नयन के प्रभार को छोड़कर कोई प्रभार अभिप्रेत है;

(ख) "टक्कर विनियम" से वाणिज्य पोत अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) के अधीन बनाए गए नियम और विनियम या भारतीय पत्तन अधिनियम (1908 का अधिनियम 15) अथवा महापत्तन न्यास अधिनियम (1963 का अधिनियम 38) के अधीन बनाया गया कोई नियम, उपविधि और विनियम अभिप्रेत है;

(ग) "न्यायालय" से उच्च न्यायालय अथवा धारा 3 या धारा 4 के अधीन नावधिकरण कार्यवाहियों के कब्जा में अन्य न्यायालय अभिप्रेत है;

(घ) "माल" के अंतर्गत यात्री सामान है;

(ङ) "अंतर्देशीय जल" के अंतर्गत (i) ऐसा सभी जल है जो वास्तव में नाव्य है चाहे वह ज्वार से प्रभावित हो या स्थलरुद्ध या खुला है या उसमें नमक या ताजा जल है और (ii) भारत के तट से सटा समुद्र का कोई भाग है जिसे इस निमित्त अभिहित किए जाने वाले भारत सरकार के सचिव ने ऐसा जलक्षेत्र प्रमाणित किया है जो अंतरराष्ट्रीय विधि द्वारा राज्यक्षेत्रीय जल क्षेत्र के संबंध में उस विधि के प्रवर्तन के अतिरिक्त भारत की राज्यक्षेत्रीय प्रभुसत्ता के भीतर आने वाला माना जाएगा;

(च) "समुद्री धारणाधिकार" से धारा 13 में विनिर्दिष्ट समुद्री धारणाधिकार अभिप्रेत है;

(क) "मास्टर" का वही अर्थ है जो वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम, 1958 (1958 का अधिनियम 44) में है और उसके अंतर्गत (नाविक के सिवाय) ऐसा प्रत्येक व्यक्ति है जो किसी पोत की कमान या प्रभार रखता है।

(ख) "पत्तन" में कोई पत्तन, बंदरगाह, नदी, नदीमुख बंदरगाह (आश्रय), डाक, नहर या ऐसा अन्य स्थान अभिप्रेत है जहां तक कोई व्यक्ति या व्यक्ति निकाय किसी अधिनियम के अधीन इसमें प्रवेश करने या उसमें सुविधा का उपयोग करने वाले पोत की बाबत प्रभार रखने के लिए सशक्त किया जाता है; ("पत्तन की सीमा" से भारतीय पत्तन अधिनियम, 1908 (1908 का अधिनियम 15) या महापत्तन न्यास अधिनियम, 1963 (1963 का अधिनियम 38) द्वारा या उसके अधीन नियत उसकी सीमा अभिप्रेत है।

(ग) "पोत" के अंतर्गत मानव या संपत्ति का (मुख्य रूप से जलमार्ग से) प्रवहण के लिए कोई यान है किंतु इसके अंतर्गत होवर क्राफ्ट (समुद्री विमान) या ऐसे वर्ग का यान नहीं है जो केन्द्रीय सरकार इस निमित्त राजपत्र में अधिसूचित करे।

(घ) "अनुकर्षण" और "पायलट कार्य" (पत्तन नयन) से किसी वायुयान के संबंध में अनुकर्षण और पत्तन नयन अभिप्रेत है जब वायुयान जलवाहित हो।

अध्याय 2

न्यायालयों की अधिकारिता

3. **न्यायालय सिविल अधिकारिता का प्रयोग करेंगे**—(1) उपधारा (2) के उपबंधों के अधीन रहते हुए इस अधिनियम के अधीन सभी दावों की बाबत सिविल अधिकारिता अनन्य रूप से उच्च न्यायालय में निहित होगी और इस अध्याय में इसमें इसके पश्चात् अंतर्विष्ट उपबंधों के अनुसार प्रयोक्तव्य होगी।

(2) यदि किसी समय केन्द्रीय सरकार की यह राय है कि उच्च न्यायालय में दावा की मात्रा असम्यक् रूप से बढ़ गई है तो वह भारत के मुख्य न्यायमूर्ति तथा संबंधित उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति से परामर्श करके राजपत्र में अधिसूचना द्वारा ऐसे मामले में पूर्णतः या उस सीमा तक जितना आवश्यक समझा जाए, राज्य के ऐसे प्रधान सिविल न्यायालयों को जो अधिसूचना में विनिर्दिष्ट किए जाएं, अधिकारिता प्रदान कर सकेगी।

(3) उपधारा (2) के अधीन जारी किसी अधिसूचना में उक्त प्रयोजन के सहायक या आनुषंगिक उपबंध किए जा सकेंगे जिनके अंतर्गत ऐसे मामलों के ऐसे न्यायालयों में संस्थित किया जाना या लंबित मामलों को ऐसे न्यायालयों को अंतरित किया जाना शासित करने वाले उपबंध भी हैं।

4. **एक उच्च न्यायालय से अनुयोगों का दूसरे उच्च न्यायालय को अंतरण**—(1) उच्चतम न्यायालय स्वप्रेरणा से अथवा किसी पक्षकार के आवेदन पर यदि वह आवश्यक समझता है तो नावधिकरण अधिकारिता विषयक कोई कार्यवाही एक उच्च न्यायालय से धारा 3 के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए किसी सक्षम उच्च न्यायालय को कार्यवाही के किसी प्रक्रम पर स्थानांतरित कर सकता है।

(2) उपधारा (1) के अधीन अंतरण का आदेश अनुयोग के सभी पक्षकारों को सुनवाई का अवसर देने के पश्चात् पारित किया जाएगा और अंतरित कार्यवाहियां उस उच्च न्यायालय में जहां वे स्थानांतरित की गई हैं, उसी प्रक्रम से जारी रखी जा सकेंगी जिस प्रक्रम पर वे स्थानांतरण के समय थीं।

5. **नावधिकरण अधिकारिता**—(1) न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता निम्नलिखित होगी, अर्थात् :

(क) उपधारा (2) में उल्लिखित किसी प्रश्न या दावा की सुनवाई और अवधारण की अधिकारिता ;

(ख) उपधारा (3) में उल्लिखित किसी कार्यवाही के संबंध में अधिकारिता ;

(ग) कोई अन्य नावधिकरण अधिकारिता जो उसे ऐडमिरेल्टी ऐक्ट, 1890 या कोलोनियल कोर्ट आफ ऐडमिरेल्टी ऐक्ट, 1890 या नावधिकरण विषयक उप निवेशक न्यायालय (भारत) अधिनियम (1891 का अधिनियम 16) के आधार पर या अन्यथा किसी भी प्रकार से अधिनियम के आरंभ के ठीक पूर्व थी ;

(घ) पोतों या वायुयानों से संबंधित कोई अधिकारिता जो उच्च न्यायालय में इस धारा से पृथक् निहित है और तत्समय इस अधिनियम के प्रारंभ के पश्चात् बनाए गए या प्रवृत्त न्यायालय के नियमों द्वारा नावधिकरण न्यायालय द्वारा प्रयोग किए जाने के लिए समनुदेशित और निदेशित है।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट प्रश्न और दावा के अंतर्गत निम्नलिखित हैं :

(क) किसी पोत के कब्जे या स्वामित्व का या उसमें किसी अंश के स्वामित्व का दावा ;

(ख) किसी पोत के सह-स्वामियों के बीच उस पोत के कब्जे, नियोजन या अर्जन के बारे में उद्भूत होने वाला प्रश्न ;

(ग) किसी पोत के या उसमें किसी अंश के बंधक या उस पर प्रभार की बाबत कोई दावा ;

(घ) किसी पोत द्वारा उसके रुकने, व्यापार या समुद्रयात्रा द्वारा हुई नुकसानी के लिए कोई दावा ;

(ङ) किसी पोत द्वारा नुकसानी के लिए कोई दावा जिसके अंतर्गत वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) के भाग 10-ख के अधीन तेल प्रदूषण नुकसानी के लिए सिविल दायित्व है ;

(च) किसी पोत में या उसकी सज्जा या उपस्कर में किसी त्रुटि के परिणामस्वरूप या निम्नलिखित के विधिविरुद्ध कार्य, उपेक्षा या त्रुटि के परिणामस्वरूप भोगी गई जीवन हानि या शारीरिक क्षति के लिए कोई दावा—

(i) पोत के स्वामी, चार्टरर या पोत का नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति, या

(ii) किसी पोत के कर्मीदल का मास्टर या कोई अन्य व्यक्ति जिसके दोषविरुद्ध कार्यों, उपेक्षा या त्रुटियों के लिए पोत के स्वामी, चार्टरर या पोत का कब्जा या नियंत्रण रखने वाले व्यक्ति उत्तरदायी है, जो पोत के नौचालन या प्रबंध में पोत में या उससे माल की लदाई, वहन या उतराई में अथवा पोत में या उससे पोतारोहण वहन या पोत से उतरने में कोई कार्य, उपेक्षा या त्रुटि है,

(छ) किसी पोत पर या उसमें वहन किए गए माल की हानि या नुकसानी के लिए कोई दावा;

(ज) किसी पोत में माल के वहन से संबंधित या किसी पोत के उपयोग या भाड़े से संबंधित किसी करार से उद्भूत कोई दावा;

(झ) जीवन, यान, पोतभार, संपत्ति, उपस्कर या उसके पोतभंग या उसके परिरक्षण के बचाव की प्रकृति में कोई दावा;

(ञ) किसी पोत या वायुयान की बाबत यानकर्षण की प्रकृति में कोई दावा;

(ट) किसी पोत या वायुयान की बाबत पायलट कार्य की प्रकृति में कोई दावा ;

(ठ) किसी पोत को प्रदाय किए गए किसी माल, सामग्री तलघर या अन्य आवश्यक सामग्री या किसी पोत को उसके प्रचालन या अनुरक्षण के लिए की गई किसी सेवा की बाबत कोई दावा ;

(ड) किसी पोत के निर्माण, मरम्मत या उपस्कर की बाबत या भारतीय पत्तन अधिनियम (1908 का अधिनियम 15) या महापत्तन न्यास अधिनियम (1963 का अधिनियम 38) के अधीन पोत प्राधिकारियों को किसी प्रभार या शोध्य की बाबत कोई दावा ;

(ढ) किसी पोत के कर्मीदल के किसी मास्टर या सदस्य द्वारा मजदूरी के लिए कोई दावा जिसके अंतर्गत मजदूरी से आवंटित या मजदूरी के रूप में शोध्य होने के लिए अधिनिर्णीत कोई रकम है और किसी धन या संपत्ति की बाबत जो किसी विधि के उपबंधों के अधीन मजदूरी के रूप में वसूलीय है और वह रीति जिसमें मजदूरी वसूल की जा सकी है ;

(ण) किसी पोत मद्दे किए गए संवितरण की बाबत किसी मास्टर, माल भेजने वाले, चार्टर करने वाले या अभिकर्ता द्वारा कोई दावा ;

(त) किसी कार्य से उद्भूत कोई दावा जो साधारण औसत कार्य है या जिसके बारे में ऐसा होने का दावा किया जाता है ;

(थ) बाटमरी से उद्भूत कोई दावा ;

(द) किसी पोत या माल के समपहरण या जब्ती के लिए जो वहन किया गया है या किया जा रहा है या जिसे किसी पोत में वहन किए जाने का प्रयत्न किया गया है या किसी पोत के या किसी माल के जब्ती के पश्चात् वापसी के लिए या नावधिकरण के अधिकारों के लिए कोई दावा।

(3) उपधारा (1) (ख) में निर्दिष्ट कार्यवाहियों के अंतर्गत निम्नलिखित हैं :

(क) वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) के अधीन कार्य करने में अक्षम व्यक्ति के स्थान पर कार्य करने के लिए किसी व्यक्ति के प्रतिस्थापन के लिए उच्च न्यायालय को कोई आवेदन;

(ख) निम्नलिखित से उद्भूत नुकसानी, जीवनहानि या शारीरिक क्षति के लिए दावा प्रवृत्त करने के लिए कोई अनुयोग —

(i) पोतों के बीच टक्कर; या

(ii) दो या अधिक पोतों में एक या अधिक की दशा में युद्धाभ्यास करने या करने में लोप करने; या

(iii) दो या अधिक पोतों में से एक या अधिक पोतों की ओर से टक्कर विनियमों के अपालन ;

(ग) वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) के अधीन पोत या अन्य संपत्ति के संबंध में उनके दायित्व की मात्रा की सीमा के लिए पोत स्वामी या अन्य व्यक्तियों द्वारा कोई अनुयोग।

(4) उपधारा (2) (ख) के अधीन न्यायालय की अधिकारिता के अंतर्गत पोत के संबंध में पक्षकारों के बीच बकाया और निपटाए न गए किसी लेखा का निपटारा करने की शक्ति और यह निदेश देने की शक्ति है कि पोत या उसका कोई अंश बेच दिया जाएगा और ऐसे अन्य आदेश करने की शक्ति होगी जो न्यायालय उचित समझे।

(5) उपधारा (2) (ञ) में उद्धारण की प्रकृति में दावा करने के प्रति निर्देश के अंतर्गत किसी पोत से जीवन बचाने में या वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) की धारा 390–404 के अधीन पोतभरण, वेशभूषण या पोतभंग के परिरक्षण में की गई सेवाओं के लिए ऐसे दावा के प्रति निर्देश किसी पोत के संबंध में किए जाने के लिए प्राधिकृत है।

(6) इस धारा के पूर्वतर उपबंध निम्नलिखित को लागू होंगे :

(क) सभी पोतों या वायुयानों के संबंध में चाहे वे भारतीय हैं या नहीं या उनके स्वामियों का निवास या अधिवास चाहे जहां हो ;

(ख) सभी दावों के संबंध में वे चाहे जहां उद्भूत हों (जिसके अंतर्गत पोतभरण या पोतभंग उद्धारण की दशा में भूमि पर प्राप्त पोतभरण या पोतभंग की बाबत दावा है) ; और

(ग) जहां तक उनका संबंध बंधक या प्रभार से है, सभी बंधक या प्रभार चाहे वे रजिस्ट्रीकृत हैं या नहीं और चाहे वे विधिक या साम्यापूर्ण हों और इनके अंतर्गत विदेशी विधि के अधीन सृजित बंधक और प्रभार हैं :

परन्तु इस उपधारा की किसी बात का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि उसका विस्तार उन मामलों तक है जिनमें वाणिज्य पोत परिवहन अधिनियम (1958 का अधिनियम 44) के किसी उपबंध के अधीन धन या संपत्ति वसूलीय है।

6. **नावधिकरण अधिकारिता के प्रयोग की पद्धति**—(1) इस अधिनियम की धारा 7 के उपबंधों के अधीन रहते हुए नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का व्यक्ति बंधी अनुयोग द्वारा सभी मामलों में आश्रय लिया जा सकता है।

(2) नावधिकरण न्यायालय की अधिकारिता का इस अधिनियम की धारा 5 की उपधारा (1) के खंड (क) से (ग) और (द) में उल्लिखित मामलों में किसी सर्वबंधी अनुयोग के द्वारा पोत या प्रश्नगत संपत्ति के विरुद्ध उसकी गिरफ्तारी करके आश्रय लिया जा सकता है।

(3) ऐसे किसी मामले में जिसमें किसी पोत या अन्य संपत्ति पर समुद्री धारणाधिकार या अन्य प्रभार है जिनके अंतर्गत दावाकृत रकम के लिए तलधर है, न्यायालय की नावधिकरण अधिकारिता का उस प्रश्नगत पोत या संपत्ति के विरुद्ध सर्वबंधी अनुयोग द्वारा आश्रय लिया जा सकता है।

(4) ऐसे किसी दावा की दशा में जिसका उल्लेख धारा 5(2)(ड) से (द) तक किया गया है, जहां—

(क) दावा पोत के संबंध में उद्भूत होता है, और

(ख) वह व्यक्ति जो किसी व्यक्ति बंधी अनुयोग में दावा में दायी होगा (जिसे इसमें इसके पश्चात् "सुसंगत व्यक्ति" कहा गया है) वह था जब अनुयोग के लिए कारण उद्भूत हुआ था तो पोत का स्वामी या चार्टरर या पोत जिसके कब्जा या नियंत्रण में था वहां नावधिकरण अधिकारिता का आश्रय लिया जा सकता है चाहे दावा से उस पोत पर निम्नलिखित के विरुद्ध सर्वबंधी अनुयोग द्वारा समुद्री धारणाधिकार बनता है या नहीं—

(i) उस पोत पर यदि उस समय जब अनुयोग लाया जाता है, तब सुसंगत व्यक्ति उस पोत के उसमें के सभी अंशों की बाबत हिताधिकारी स्वामी या किसी चार्टर के अधीन पट्टांतरण करके चार्टरर है; या

(ii) किसी अन्य पोत पर जिसका उस समय जब अनुयोग लाया जाता है, सुसंगत व्यक्ति उसमें के सभी अंशों की बाबत हिताधिकारी स्वामी है।

10. **पोत के विक्रय पर अधिकार विहित होना**—न्यायालय द्वारा पोत के विक्रय पर पोत विल्लंगमों से जिसके अंतर्गत बंधक, प्रभार, भाडमान और समुद्री धारणाधिकार है, मुक्त क्रेता में निहित होगा ।

11. **विक्रय आगमों का वितरण**—(1) जहां सर्वबंधी अनुयोग में न्यायालय ने उस संपत्ति को जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है, विक्रय करने का आदेश दिया है, कोई पक्षकार जिसने उक्त संपत्ति या उसके विक्रय आगमों के विरुद्ध डिक्री या आदेश प्राप्त कर लिया है, निर्णय प्राप्त करने के पश्चात् उक्त संपत्ति के विक्रय आगमों के विरुद्ध दावा के पूर्विकता क्रम के अवधारण के आदेश के लिए समावेदन की सूचना देगा, न्यायालय को आवेदन कर सकेगा ।

(2) जहां किसी सर्वबंधी अनुयोग में न्यायालय उस संपत्ति के जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है, विक्रय किए जाने का आदेश देता है और संपत्ति विक्रय कर दी गई है, वहां न्यायालय आदेश देगा कि एक अंतरराष्ट्रीय और एक राष्ट्रीय समाचार पत्र में जैसा न्यायालय विनिर्दिष्ट करे, सूचना दी जाए कि संपत्ति सर्वबंधी अनुयोग में न्यायालय आदेश से विक्रीत की जा चुकी है जिसके नाम तथा आगम, उसकी मात्रा विनिर्दिष्ट करते हुए शुद्ध विक्रय न्यायालय में संदत्त कर दिया गया है और उक्त आगम के दावा की पूर्विकता के क्रम का अवधारण उक्त सूचना के प्रकाशन की तारीख से नब्बे दिन की अवधि के पर्यवसान के पश्चात् ही किया जाएगा और कोई किसी पक्षकार जो संपत्ति या उसके विक्रय आगम में दावा रखता है, न्यायालय को मध्य-क्षेप की इजाजत के लिए आवेदन करना चाहिए और उसे उक्त अवधि की समाप्ति से पहले अपना दावा उसके समक्ष अनुयोग फाइल करके या किसी अन्य समुचित न्यायालय के समक्ष वाद फाइल करके अपना दावा साबित करना चाहिए ।

(3) न्यायालय किसी पक्षकार के आवेदन पर जिसने जैसा उपधारा (2) में उपबंधित है न्यायालय के समक्ष या भारत में सक्षम अधिकारिता वाले किसी अन्य न्यायालय के समक्ष संपत्ति या विक्रय आगम के विरुद्ध डिक्री प्राप्त करने के लिए कार्यवाही संस्थित किया है, नब्बे दिन की अवधि बढा सकता है और न्यायालय उक्त वाद या अनुयोग को अथवा उससे किसी अपील का निपटारा होने के पश्चात् तीस दिन की अवधि तक विक्रय आगम का संवितरण नहीं करेगा और/या कि उसका पूर्विकता का अवधारण नहीं करेगा ।

(4) ऊपर उपधारा (3) में अंतर्विष्ट उपबंधों के होते हुए भी न्यायालय किसी ऐसे पक्षकार द्वारा आवेदन किए जाने पर जिसने संपत्ति या विक्रय आगम के विरुद्ध डिक्री अभिप्राप्त कर लिया है, पूर्विकता का अवधारण कर सकता है और विक्रय आगमों में से संदाय का निदेश दे सकता है यदि न्यायालय की यह राय है कि आवेदक का दावा उस दावे पर जिसके लिए अनुयोग या वाद संस्थित किया गया हो, पूर्विकता का हकदार है :

परन्तु न्यायालय ऐसे सभी पक्षकारों की पूर्विकता का अवधारण करने या विक्रय आगमों में से संवितरण का निदेश देने से पहले 90 दिन की विहित अवधि के भीतर संपत्ति या विक्रय आगमों विरुद्ध दावा किया है या वाद या अनुयोग फाइल किया है सुनवाई करेगा ।

12. **दावा की पूर्विकता का क्रम**—(1) नावधिकरण अनुयोग में परस्पर पूर्विकता का अवधारण करने के दावे का क्रम निम्नलिखित रूप में होगा :

(क) ऐसा दावा जहां किसी पोत या अन्य संपत्ति पर जिसके अधीन बंकर है, समुद्री धारणाधिकार है जिसके विरुद्ध कार्यवाही अग्रसर की जा रही है ।

(ख) पोत या अन्य संपत्ति पर बंधक और प्रभार जिसके विरुद्ध कार्यवाही अग्रसर की जा रही है ।

(ग) अन्य सभी दावे ।

(2) ऊपर खंड 1 (क) में परस्पर दावों के बीच पूर्विकता निम्नलिखित रूप में होगी :

(क) जीवन, पोत या संपत्ति के बचाव के लिए दावे परन्तु जीवन के बचाव का अन्य बचावों के ऊपर पूर्विकता होगी ।

(ख) पोत के मास्टर या कर्मीदल के सदस्यों को पोत में उनके नियोजन की छह मास से अनधिक की मजदूरी की बाबत शोध्य मजदूरी और अन्य रकम ।

(ग) पत्तन, नहर और अन्य जलमार्ग शोध्य और पायलट कार्य शोध्य ।

(घ) पोत के मास्टर या कर्मीदल के सदस्यों को पोत पर उनके नियोजन की बाबत ऊपर खंड एक के अधीन संदत्त रकम की कटौती करने के पश्चात् शोध्य मजदूरी और अन्य रकम की बकाया ।

(ङ) (i) पोत के प्रचालन से प्रत्यक्षतः संबंधित जीवन हानि या शारीरिक क्षति की बाबत दावा,

(ii) साधारण औसत के लिए अभिदाय का दावा,

(iii) शारीरिक नुकसानी या पोत के प्रचालन से कारित नुकसानी से जो पोत पर वहन किए जाते रहे पोत भरण पात्र और यात्री चीजवस्त से भिन्न नुकसानी या हानि है, उद्भूत अपकृत्य पर आधारित दावा,

(iv) बाटमरी ।

(3) परस्पर दावा की पूर्विकता का अवधारण करने में निम्नलिखित नियम लागू होंगे—

(i) पूर्विकता के क्रम में पूर्वतर दावा पश्चातवर्ती दावा को अपवर्जित करेगा ।

(ii) यदि किसी पूर्विकता प्रवर्ग में एक से अधिक दावा है उनकी पंक्ति समरूप होगी ।

(iii) विभिन्न बचाव के किए दावे की पंक्ति समय के उस क्रम के अनुरूप होगी जब उससे उद्भूत दावा पैदा हुआ ।

(iv) बचाव, पत्तन शुल्क के लिए दावे, मजदूरी और सामान्य औसत की प्रकृति के दावों को ऊपर खंड 2 (ङ) में वर्णित सभी दावों के जो पोत से समय में पहले संलग्न है जब उक्त दावा को उद्भूत करने वाला संचालन उद्भूत हुआ था ऊपर पूर्विकता प्राप्त होगी ।

13. **समुद्री धारणाधिकार**—(1) समुद्री धारणाधिकार दावों के निम्नलिखित दृष्टांत में पोत या संपत्ति से संलग्न होंगे और ऐसे समुद्री धारणाधिकार के उद्भूत होने की तारीख वह तारीख होगी जब उक्त दावा का उद्भूत करने वाला संचालन किया गया था :

(क) जीवन, पोत या संपत्ति के बचाव के लिए दावा ।

(ख) पोत के मास्टर या कर्मीदल के सदस्य को पोत पर नियोजन की बाबत शोध्य मजदूरी और अन्य रकम ।

(ग) पत्तन और नहर तथा अन्य जलमार्ग शोध्य और पायलट कार्य शुल्क ।

(घ) जीवन हानि या शारीरिक क्षति जिसका पोत के प्रचालन से प्रत्यक्ष संबंध हो ।

(ङ) साधारण औसत के अभिदाय के लिए दावा ।

(च) पोत के प्रचालन से जो पोत पर पोत भरण, पात्र और यात्री चीज वस्त को नुकसानी या हानि से भिन्न है, कारित भौतिक हानि या नुकसानी से उद्भूत होने वाले अपकृत्य पर आधारित दावे ।

(2) समुद्री धारणाधिकार उस तारीख से जिससे धारणाधिकार पोत या संपत्ति से संलग्न हुआ, एक वर्ष की समाप्ति पर समाप्त समझा जाएगा :

परन्तु, ऐसा दावा, यदि कोई हो जो परिसीमा से वांछित न हो, व्यक्ति बंधी अनुयोग द्वारा प्रवृत्त किया जा सकता है :

परन्तु, यह और कि एक वर्ष की अवधि का और विस्तार किया जा सकता है यदि धारणाधिकार का दावेदार धारणाधिकार को पोत या संपत्ति के विरुद्ध ऐसे कारणों के आधार पर जो उसके नियंत्रण से परे था, प्रश्न करने के लिए अनुयोग प्रारंभ करने में असमर्थ था।

14. **विदेशी पोत की बाबत प्रक्रिया**—(1) इस अधिनियम के अधीन सभी अनुयोगों में उस पोत की जिसके विरुद्ध कार्यवाही की गई है, राष्ट्रीयता का वाद पत्र में कथन किया जाएगा और यदि पोत विदेशी पोत है तो वाद की सूचना या उसका संस्थित किया जाना उस राज्य के जिसका पोत है, कौंसल को दी जाएगी यदि उस शहर में, जहां न्यायालय स्थित है, वह निवासी है।

(2) ऐसी सूचना की तारीख का कथन या ऐसा कथन कि शहर में ऐसा कोई कौंसल उपस्थित नहीं है, पोत की गिरफ्तारी के लिए आवेदन में समर्थन में शपथ पत्र में किया जाएगा।

(3) यदि सूचना कौंसल पर तामील हो जाती है तो उक्त सूचना की एक प्रति शपथ पत्र के साथ नत्थी की जाएगी।

अध्याय 3

प्रक्रिया और अपील

15. **सिविल प्रक्रिया संहिता का लागू होना**—(1) सिविल प्रक्रिया संहिता (1905 का अधिनियम सं० 5) न्यायालय के समक्ष सभी प्रक्रिया शासित करेगा जहां तक वे इस अधिनियम उसके अधीन बनाए गए नियमों के उपबंधों से असंगत या प्रतिकूल नहीं है।

(2) नावधिकरण न्यायालय में अंतर्वर्ती आवेदनों के बारे में कार्यवाही के या ऐसे अंतरिम और अन्य आदेश जो वह उसके समक्ष पक्षकारों के हित का संरक्षण करने के लिए आवश्यक या सभी चीज सभा में पारित करते समय सिविल न्यायालय की सभी शक्तियां होंगी।

16. **असेसर की सहायता**—(1) सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 का अधिनियम सं० 5) की धारा 140 के उपबंध इस अधिनियम के अधीन सभी कार्यवाहियों को लागू होंगे।

(2) केन्द्रीय सरकार राजपत्र में असेसरों की सूची प्रकाशित करेगी जिसमें उन व्यक्तियों के नाम होंगे जिन्हें नावधिकरण अ मामलों में विशेष अर्हताएं और अनुभव होंगे जिन्हें असेसर के रूप में न्यायालय की स यता के लिए बुलाया जाएगा।

(3) इस धारा के अधीन असेसर की नियुक्ति का यह अर्थ नहीं लगाया जाएगा कि वह किसी पक्षकार द्वारा विशेषज्ञ साक्षी की परीक्षा वर्जित करता है।

(4) केन्द्रीय सरकार असेसरों की अर्हताएं उनके द्वारा पालन किए जाने के लिए कर्तव्य की प्रकृति, और उन्हें संदत्त की जाने वाली फीस तथा अन्य सहायक और आनुषंगिक बातें विहित करते हुए नियम बना सकेगी।

17. **माध्यस्थम् को निर्देश**—किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी न्यायालय को नावधिकरण विषय कार्यवाही में सभी पक्षकारों की लिखित सहमति से उसके समक्ष संपूर्ण विवाद को उससे उद्भूत विधि अथवा तथ्य का ऐसा प्रश्न जो वह आवश्यक समझे माध्यस्थम् को निर्देशित कर सकेगा और यथास्थिति विवाद या प्रश्न का इस प्रकार निपटारा करे जो न्यायालय द्वारा अवधारित या उपांतरित अधिनिर्णय के अनुरूप हो।

18. **अपील**—उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश के किसी निर्णय, डिक्री या अंतिम आदेश या इस अध्याय के अधीन नावधिकरण अधिकारिता का प्रयोग करने वाले किसी अन्य न्यायालय से अपील उच्च न्यायालय के खंड न्याय पीठ को होगी।

अध्याय 4

प्रकीर्ण

19. **नियम बनाने की शक्ति**—(1) केन्द्रीय सरकार भारत के राजपत्र में अधिसूचना द्वारा इस अधिनियम के प्रयोजनों को कार्यान्वित करने के लिए संपूर्ण भारत के किसी भाग के लिए नियम बना सकेगी।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियमों में इस अधिनियम के अधीन नावधिकरण न्यायालयों में प्रथा और प्रक्रिया का विनियमन तथा ऐसी कार्यवाहियों में फीस, खर्च और व्यय का विनियमन करने के लिए उपबंध होंगे।

(3) जब तक उपधारा (1) के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा नियम नहीं बनाए जाते हैं, तब तक उच्च न्यायालयों में नावधिकरण विषय अधिनियमित के प्रयोग का इस समय विनियमित करने वाले नियम लागू बने रहेंगे।

(4) केन्द्रीय सरकार इस अधिनियम के अधीन बनाए गए प्रत्येक नियम और निकाली गई प्रत्येक अधिसूचना को इसका अधिसूचना निकाली जाने के पश्चात् संसद् के दोनों सदनों के समक्ष जब वह सत्र में हो तीस दिन की कुल अवधि के लिए रखवाएगी (यह अवधि, एक सत्र में या दो सत्रों में या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी) और यदि पूर्वोक्त सत्र या आनुक्रमिक सत्रों की समाप्ति से ठीक पूर्व दोनों सदन नियम या अधिसूचना में उपांतर करने के लिए सहमत हो जाते हैं या दोनों सदन सहमत हो जाता है कि नियम नहीं बनाए जाने चाहिए या अधिसूचना नहीं निकाली जानी चाहिए तो वह नियम या अधिसूचना तत्पश्चात् यथास्थिति ऐसे उपांतरित रूप में प्रभावी होगी या प्रभावी नहीं रहेगी, किन्तु, ऐसे उपांतरण या रद्दकरण का उस नियम या अधिसूचना के अधीन पहले की गई किसी बात पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा।

अध्याय 5

निरसन और व्यावृत्ति

20. **निरसन और व्यावृत्ति**—(1) निम्नलिखित अधिनियमितियां इसके द्वारा निरसित की जाती हैं :

(क) (दि) ऐडमिरल्टी आफेंसेज (कोलोनियल) ऐक्ट, 1849 (12 और 13 विक्ट० सी० 96) ;

(ख) (दि) ऐडमिरल्टी जुरिस्डिक्शन (इंडिया) ऐक्ट, 1860 (23 और 24 विक्ट० सी० 96) ;

(ग) (दि) ऐडमिरल्टी कोर्ट ऐक्ट, 1861 (24 और 25 विक्ट० सी० 10) ;

(घ) (दि) नावधिकरण विषयक उपनिवेशक न्यायालय (भारत) अधिनियम, 1891 (1891 का अधिनियम सं० 10)

(ङ) लेटर्स पेटेंट (जहां तक वह मुम्बई, कलकत्ता और मद्रास उच्च न्यायालयों को लागू होता है)।

(2) उपधारा (1) में उल्लिखित किसी अधिनियमिति के निरसन के होते हुए भी ऐसी किसी अधिनियमिति के अधीन बनाया गया कोई नियम, निकाली गई अधिसूचना, विनियम, उपविधि या आदेश जब तक प्रतिसंहृत नहीं किया जाएगा तब तक प्रवृत्त बनी रहेगी मानो वह इस अधिनियम के तत्स्थानी उपबंधों के अधीन बनाया गया था या निकाली गई थी।

(3) इस धारा में विशेष मामलों के उल्लेख से निरसन के प्रभाव के संबंध में साधारण खंड अधिनियम, (1897 का अधिनियम सं० 10) की धारा 6 के लागू होने पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं रखेगा या प्रभावित नहीं करेगा।

मप्रासमुद्रो—एस 6—1 एम आफ एल & जे/एन डी/99—22-6-99—200

©

PLD. 92. CLI
200-1999 (DSK. IV)

मूल्य [illegible] (देश में) रुपए 213 (विदेश में) £ 8.[illegible] या $ 12.[illegible]

प्रबन्धक, भारत सरकार मुद्रणालय, कोयम्बतूर द्वारा मुद्रित तथा प्रकाशन नियंत्रक, भारत सरकार, सिविल लाइन्स, दिल्ली-110 054 द्वारा प्रकाशित।